

खंड

3

fgnh nfyr dgkuh-II

इकाई 12	
yVdh gbl 'kr! % i°yknprn nk l	5
इकाई 13	
olrj.kh % uhjk i jekj	16
इकाई 14	
l exyh % dkojh	31
इकाई 15	
vixkjk % Mk- d l e e?koky	44

पाठ्यक्रम विशेष समिति

ik- vke voLFkh गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर	ik- fuey'k tlu ¼lokfuouk% ए-21/71, कुतुब एन्क्लेव फेज-I, गुडगांव, हरियाणा	ik- jkeLo : i prɔinh 3, बैंक रोड, इलाहाबाद
ik- xkiky jk; सी-3, कावेरी, इग्नू आवासीय परिसर, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	ik- ie 'kdj ¼lokfuouk% बी-16, सागर विश्वविद्यालय परिसर, सागर	ik- yYyu jk; ¼lokfuouk% 3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला
ik- ukeoj flg 32-ए, शिवालिक अपार्टमेंट अलकनंदा, नई दिल्ली	ik- ethc fjtoh ¼lokfuouk% 220, जाकिर नगर नई दिल्ली	ik- f'kodekj feJ ¼lokfuouk% एफ-17, मानसरोवर पार्क कालोनी पंचायती हॉस्पिटल मार्ग बल्लभ विद्यानगर, गुजरात
ik- fuR;kun frokjh ¼lokfuouk% दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	ik- eutj ik.M; ¼lokfuouk% जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	Lo- f'ko i:lkn flg वाराणसी
		ik- ljtHkku flg आई-127, नारायणा विहार, नई दिल्ली

ikB; Øe fuek.k

ikB y:[kd l iiknd Mk- fujitu lgk; काशी हिंदी विद्यापीठ, बनारस (उ.प्र.)	bdkb: l i; k 12	ikB; Øe l i; k t d , o l iiknd ik- foey Fkkjkr मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली
Mk- eudk JhokLro दिनबंधु कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	13,14,15	

eni.k fuek.k

lh- ,u- ikM;
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली

vkoj.k fp=dkj

loh lkojdj
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली

l fpoky ;h lg;kx

feffky:'k i:lkn
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली

अगस्त, 2013

© इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2013

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली - 110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी.166ए, भगवती विहार, उत्तम नगर, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), नई दिल्ली-110059

मुद्रित

खंड परिचय

एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष में ऐच्छिक पाठ्यक्रमों की श्रृंखला में शामिल 'भारतीय दलित साहित्य : विशेष अध्ययन' मॉड्युलर का तीसरा पाठ्यक्रम 'हिंदी दलित साहित्य का विकास' का तीसरा खंड अध्ययन के लिए आपके समक्ष हैं। इस खंड में कुल चार इकाइयाँ हैं जिनको क्रमवार आप देखेंगे।

12. लटकी हुई शर्त - प्रह्लादचंद्र दास
13. वैतरणी - नीरा परमार
14. सुमंगली - कावेरी
15. अंगारा - कुसुम मेघवाल

प्रस्तुत खंड की प्रथम इकाई में आप (इकाई नं. 13) 'लटकी हुई शर्त' कहानी पर आधारित पाठ का आलोचनात्मक अध्ययन करेंगे। जातिवादी संरचना में सामान्य प्रकार से जीवन जीने की दलित व्यक्ति की आकांक्षा को निर्ममता से कुचल देती रही। उनके साथ किस प्रकार से भेदभावपूर्ण रवैया अपनाकर सवर्ण जातियाँ कटु यथार्थ को बड़े ही संवेदनशीलता से प्रकट करती हैं। कहानी दलित उत्पीड़न, अपमान, बहिष्करण की त्रासदी को अभिव्यक्त करके, समाज को आईना दिखाकर समाज के उस क्षयरोग का निदान ढूँढ लेती है। श्रम का अपमान करने वाली ब्राह्मणवादी परजीवि परंपरा को प्रश्नों के कटघरे में घेरकर कहानी का मुख्य पात्र गंगाराम श्रेष्ठताबोध के दंभ से फूले सवर्णों को यथार्थ के धरातल पर उतारकर श्रम मूल्य के सम्मान का नया पाठ पढ़ाती है।

इस खंड की दूसरी इकाई 'वैतरणी', नीरा परमार की कहानी पर आधारित है। मूल रूप में यह इकाई कहानी के माध्यम से भारतीय समाज व्यवस्था में समाज से बहिष्कृत दलित वर्ग के साथ समस्त अन्य जातियाँ किस अमानवीय रूप में पेश आती हैं, की सच्चाई से आपको परिचित कराती हैं। स्वाधीन भारत में जाति रचना की मूल प्रवृत्ति छुआछूत, भेदभाव और तिरस्कार के कारण करोड़ों इंसान जीवन की मूलभूत सुविधा से भी वंचित रह जाते हैं। कहानी का कथ्य विषमतावादी संस्कृति पर सवाल खड़े करता है। देश के वे समुदाय विकास में साझीदार क्यों नहीं बन पाते हैं, जिस विकास में उनके अमूल्य श्रम लगे हैं। किसी भी देश के लिए सांस्कृतिक पहचान महत्वपूर्ण होती है, अतः देश की सांझी संस्कृति के प्रति आशावान यह कहानी हमारे समक्ष अनेक प्रश्न छोड़ जाती है।

इस खंड की तीसरी इकाई दलित लेखिका कावेरी की कहानी 'सुमंगली' पर आधारित है। प्रस्तुत कहानी दलित किशोरी 'सुगना' के तिहरे शोषण की त्रासदी को मार्मिक रूप से रेखांकित करती है। भवन निर्माण के स्थान पर अपने पति और सास के साथ श्रम करने वाली विवाहित किशोरी ठेकेदार के वहशी यौन शोषण की शिकार है। उसकी सास और पति इस उत्पीड़न को होते हुए देखने को मजबूर हैं। वे दोनों मिलकर भी ठेकेदार की क्रूरता और वहशीपन का विरोध, नहीं कर सकते। दिनभर के श्रम का मूल्य ठेकेदार की हवस की शिकार सुगनी को नरकतुल्य यातना सहने के बाद ही मिल पाता है। 'सुमंगली' कहानी के द्वारा लेखिका इस जाति आधारित समाज व्यवस्था को प्रश्नांकित करते हुए जातिप्रथा की निर्ममता निघृणता, संवेदनहीनता और दलितों की आर्थिक निर्भरता के जाति निहाय कारणों को उजागर करती है। इस इकाई को पढ़ने से आप समझ सकेंगे कि

दलित कहानी की कथावस्तु की केन्द्रीय चेतना मुक्ति की चाहत है। इसके लिए पितृसत्ता, जातिप्रथा, आर्थिक पिछड़ेपन और दास्यत्व की जंजीरों से मुक्त होने के लिए सत्ता के इन केन्द्र स्थानों पर प्रखर प्रहार करने की जरूरत है। कहानी समताधारित, शोषणमुक्त समाज स्थापना के अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुई है, इसे आप पाठावलोकन से समझ सकेंगे।

खंड की अंतिम इकाई कुसुम मेघवाल की कहानी 'अंगारा' दलित स्त्री जीवन के यातनापूर्ण यथार्थ को बयान करती है और साथ ही वर्ण-जाति-दास्य की यातना से मुक्ति की राह भी तलाशती हैं। दलित स्त्री का प्रतिरोध में उठा स्वर जाति वर्चस्व और पुरुषवर्चस्व को नकारते हुए अपने सम्मान के लिए संघर्ष करने का साहस भी जुटा लेता है। उत्पीड़न, यौन शोषण, अपमान को सहना और बेबस होकर जीना भी एक तरह से दासता को स्वीकारना है। कहानी की मुख्य पात्र 'जमना' अत्याचार के विरोध में खड़ी होकर अत्याचारियों को स्वयं ही सजा देने का निर्णय लेती है, क्योंकि वह जान चुकी हैं कि प्रशासन, न्यायपालिका, पुलिसतंत्र दलित स्त्री के प्रति संवेदनहीन रवैया अपनाता है। सुरक्षा व न्याय की व्यवस्था उत्पीड़ित के पक्ष में नहीं बल्कि अत्याचारियों के साथ खड़ी दिखाई देती हैं। न्याय के लिए 'जमना' और उसके परिवार द्वारा अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष किया। भारतीय जाति व्यवस्था, पुरुषसत्ता और राज्य के प्रशासन पर अनेकानेक प्रश्न उठाता है। इन चारों इकाइयों के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि सभी कहानियाँ रूढ़ और यथास्थितिवादी समाज के प्रति प्रतिरोध का नया समाजशास्त्र रचती है। कहानीकार का वैयक्तिक अनुभव और अस्मिता-अस्तित्व का संघर्ष लोक-संबद्ध होकर उभरता है। जातिवादी समाज के धिनौने वर्चस्ववादी उत्पीड़क चरित्र को उजागर करके, उसके विरोध के लिए रचनात्मक लेखन को माध्यम बनाती है। साहित्य चूंकि समाज का प्रतिबिंब माना जाता है, तो उसी समाज को आईना दिखाकर समाज के उस क्षयरोग का निदान भी ढूंढ लेती है। श्रम का अपमान करने वाली ब्राह्मणवादी परजीवी परंपरा को पैसे प्रश्नों के कटघरे में घेरकर कहानी का मुख्य पात्र दलित गंगाराम मिथ्या श्रेष्ठताबोध के दंभ से फूले सवर्णों को यथार्थ के धरातल पर उतारकर व्यक्ति के सम्मान और श्रम के मूल्य का सम्मान करने का नया पाठ पढ़ाता है।

इकाई 12 yVdh gbl 'kr! i°yknpn nk l

bdkbl dh : iji[kk

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 दलित कहानी का सौन्दर्यशास्त्र

12.2.1 दलित कहानी : पारंपरिक कहानी से अलगाव के धरातल

12.2.3 दलित कहानी के प्रतिमान

12.3 प्रह्लादचंद्र दास का जीवन एवं कृतित्व

12.4 लटकी हुयी शर्त : दलित चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति

12.5 लटकी हुयी शर्त : कथावस्तु

12.5.1 गांव की सामाजिक संरचना और सवर्ण श्रेष्ठता

12.5.2 वर्ण-श्रेष्ठता का दुर्ग ओर दलित चेतना

12.6 लटकी हुयी शर्त : असहमति और भविष्य दृष्टि का प्रश्न

12.7 सारांश

12.0 mÍ' ;

एम.एच.डी. 19 पाठ्यक्रम के खंड 2 की इकाई 4 के अंतर्गत यह इकाई प्रह्लादचंद्र दास की कहानी 'लटकी हुयी शर्त' पर आधारित है इस पाठ के माध्यम से आप भारतीय समाज की मौजूदा संरचना में उस हस्तक्षेप से रू-ब-रू हो सकेंगे, जो पारंपरिक वर्णवाद से असहमत होने का जोखिम उठा रहा है। यह स्वर विद्रोह की इस परंपरा का ही समकालीन रूप है जो सदियों से किसी-न-किसी रूप में भारतीय समाज में जारी है। विद्रोह या असहमति की इस परंपरा की शुरुआत वैदिक काल से ही शुरू होती है, वैदिक विरुद्ध श्रमण परंपरा का टकराव हमेशा रहा चार्वाक, बौद्ध मध्यकालीन संतों और 19वीं सदी के ज्योतिबा फुले व 20वीं सदी के भीमराव आंबेडकर ने किया। हस्तक्षेप की यह परंपरा धर्मसत्ता और समाज सत्ता के उन गठजोड़ों को बेनकाब करती है, जो बहुसंख्यक के साथ अन्याय, अत्याचार, अपमान, अपवर्जन और बहिष्करण पर आधारित है। शोषण की इस सवर्ण मानसिकता को वैधता प्रदान करने के लिए हिन्दू शास्त्रों ने जिस आकर्षक कुहेलिका का निर्माण किया, उसे स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, पूर्व जन्म मोक्ष आदि अनेक जादुई पदबंधों से प्रकट किया। यह दर्शन बाह्यतः और कर्म आधारित है पर मूलतः सवर्ण श्रेष्ठता को स्थापित कर उस भाग्यवादी समरसता दर्शन का विस्तार है, जहाँ लौकिक कष्ट, शोषण और बहिष्करण के लिए किसी पारलौकिक सत्ता या न्याय की तरफ़ दारी कर विद्रोह में उठी हर आवाज़ को धर्म और संस्कृति विरोधी करार दिया जाता है। वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को द्विज मानती है। द्विज अर्थात् दूसरा जन्म। यह दूसरा जन्म उपनयन संस्कार (जनेऊ संस्कार) के बाद प्राप्त होता है। चौथे वर्ण अर्थात् शूद्र को उपनयन संस्कार का हक नहीं है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार शूद्रों का कार्य है द्विजों की सेवा करना। उनके लिए सामाजिक अधिकार जिनमें इंसान के बुनियादी अधिकार पढ़ना, स्वतंत्र व्यवसाय करना, धनार्जन करना एवं अपनी रक्षा हेतु शस्त्र धारण करना वर्जित है। इस अमानवीय व्यवस्था से असहमति के स्वर लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज करते रहे। इन स्वरों को ही आधुनिक शब्दावली में 'दलित मुक्ति' का स्वर कहते हैं।

ध्यान से देखें तो 'दलित मुक्ति' का सवाल भारत की बहुसंख्यक आबादी की मुक्ति का सवाल है। दलित चिंतक कंवल भारती कहते हैं 'दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है करोड़ों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्म शास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया। उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था, और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था। इसलिए इसके केंद्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे वह भेदभाव जाति के आधार पर हो, रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर ही क्यों न हो।'

19वीं सदी में ज्योतिबा फुले एवं 20वीं सदी में भीमराव आंबेडकर ने दलित चिंतन को आधुनिक चिंतन के केन्द्रीय विमर्श में रूपांतरित कर दिया इस विमर्श से साहित्य संसार अछूता नहीं रहा कहानियों में भी यह पहलू उभरा। प्रगतिवादी प्रेमचंद निराला, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर, नागार्जुन आदि अनेक रचनाकारों ने दलित कहानी चेतना को अपनी कहानियों का आधार बनाया पर प्रचलित अर्थ में जिसे हम दलित कहानी (साहित्य) कहते हैं, वह इनसे अलग है। दलित कहानी और दलित चेतना की कहानी को रेखांकित करते हुए कहा जाता है कि, 'दलित कहानी दलित चेतना की कहानी में मूल अंतर है अनुभूति का दलित लेखकों की अनुभूति उनकी अपनी अनुभूति है, जबकि दलित चेतना के लेखकों की अनुभूति, उनकी प्रगतिवादी सोच से पैदा हुयी है। एक की चेतना दासता से मुक्ति पूर्ण समता भाव की है, तो दूसरी समाज सुधार की चेतना है। पहली धारा डॉ. आंबेडकर के दर्शन से जुड़ी है तो दूसरी धारा मार्क्सवादी और गाँधीवादी चिंतन पर आधारित है।

हिन्दी कहानी के इतिहास में दलित कहानी ने नब्बे के दशक में दस्तक दी। सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता, अन्याय, बहिष्करण और इनसे मुक्ति के लिए संघर्ष को कथा मानकों के रूप में स्वीकार करने वाली इस दुनिया के प्रमुख हस्ताक्षर हैं - ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, दयानंद बटोही, सूरजपाल चौहान, कावेरी, कुसुम वियोगी, प्रह्लादचंद्र दास, विपिन बिहारी, सुशीला टाकभौरे, रत्नकुमार सांभरिया आदि। इस इकाई में प्रह्लादचंद्र दास की कहानी 'लटकी हुयी शर्त' के माध्यम से आप भारतीय गाँव के उस नारकीय दृश्य से रू-ब-रू होंगे, जहाँ सदियों से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था के कारण दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। कहानी का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह यथास्थितिवाद की इस जड़ता को तोड़ती है। कहानी का दुसाध (एक दलित जाति) नायक जिस नये समाजशास्त्र का आग्रह करता है, उसमें समता के मानवीय दृष्टिकोण की पक्षधरता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप परिचित होंगे-

- वर्णवाद के उस नृशंस रूप से, जिससे भारतीय गाँव की बहुसंख्यक आबादी त्रस्त है।
- दलित प्रतिरोध या हस्तक्षेप की उस चेतना से जो परंपरा को प्रश्नांकित करती है।
- भविष्य दृष्टि की उस समझ से जो यथास्थितिवाद से असहमत है।
- झारखंड के गाँवों की सामाजिक संरचना से।
- वर्णवाद और जाति आधारित व्यवस्था के प्रतिरोध में उठने वाले दलित सौंदर्यशास्त्र से।
- 'लटकी हुयी शर्त' कथावस्तु की केन्द्रीय चेतना से।

- 'लटकी हुयी शर्त' कहानी के उन प्रतिमानों से जो मौजूदा दलित विमर्श में उपस्थित हैं।
- कहानी में उपस्थित उस भविष्य दृष्टि से जो वर्तमान की नृशंसताओं के मद्देनजर अस्वीकार के साहस का रास्ता चुनती है।
- प्रचलित समाज व्यवस्था में सवर्ण हिन्दू के उस खोखलेपन से जो जातिगत धारणा के बरअक्स उठने वाली समतामूलक समाज व्यवस्था की माँग को शांति समाप्त करने वाली अराजक प्रवृत्ति का फतवा जारी कर यथास्थितिवाद को जारी रखने की युक्तियाँ ढूँढ़ता है।
- वैकल्पिक सौन्दर्यशास्त्र की उस समझसे जो स्वस्थ समाज की अनिवार्य ज़रूरत है।

12.1 प्रस्तावना

बीती सदी के अंतिम दशक में दलित चेतना संपन्न कहानियों ने हिन्दी साहित्य में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की। इन कहानियों के आधारभूत सरोकार थे, एक तो यह कि सदियों पुरानी वर्ण-व्यवस्था, दलित-उत्पीड़न शोषण और बहिष्करण के समाजशास्त्र की असलियत को उजागर किया जाए, दूसरा यह कि इनके खिलाफ असहमति और विद्रोह के तेवरों के साथ संघर्ष कर समतामूलक समाज की वास्तविक जनतांत्रिक अवधारणा प्रतिष्ठित की जाए। दलित कहानियों के लिए आंबेडकरवादी कहानी संज्ञा का भी प्रयोग किया जाता है। कहानी की यह धारा मौजूदा दौर में मुख्यधारा के रूप में प्रतिष्ठित है। दलितों के प्रति उनके स्वभावगत व्यवहारों को जिस साहस और बेलौस ढंग से प्रकट किया है, निश्चित रूप में वह हिन्दी साहित्य लिए के एक बड़ी उपलब्धि है। जहाँ पारंपरिक कहानी का सौंदर्यशास्त्र आनंद पर आधारित है, वहीं दलित कहानी उत्पीड़न की व्यथा या वेदना पर आधारित है। कहना होगा कि इन कहानियों से गुजरकर पाठक वेदना और विद्रोह की उन मनोवृत्तियों से रू-ब-रू होता है, जिनकी अनिवार्य फलश्रुति होती है वह बेचैनी उसे समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व भाव के लिए प्रेरित करती है। अन्याय के विरोध पर आधारित इस भविष्य दृष्टि ने कहानी के नये सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया। इस धारा के रचनाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि (सलाम, घुसपैठिए), मोहनदास नैमिशराय (आवाज़ें), जय प्रकाश कर्दम (तलाश), दयानंद बटोही (सुरंग), सूरजपाल चौहान (हैरी कब आएगा), कावेरी (द्रोणाचार्य एक नहीं), कुसुम वियोगी (चार इंच की कलम), प्रह्लाद चंद दास (पुटुस के फूल, पराये लोग), कुसुम मेघवाल, बुद्धशरण हंस (तीन महाप्राणी), सुशीला टाकभौरे (टूटता वहम, अनुभूति के घेरे, संघर्ष), रत्नकुमार सांभरिया (बांग तथा अन्य लघुकथाएँ, हुकम की दुग्गी), विपिन बिहारी, सूरज बड़त्या आदि उल्लेखनीय हैं।

दलित कहानीकारों ने जातिवादी समाज के कटु यथार्थ को अपनी रचनाओं में संवेदनशीलता से प्रकट किया है। परिवर्तन या बदलाव की आकांक्षा से प्रेरित इन कहानियों में दलित उत्पीड़न, बहिष्करण, अपमान, अवमानना के विविध प्रसंगों के चित्रण के साथ विमर्श की उस नयी प्रस्तावना को भी सामने लाया गया, जिसमें मानवाधिकार या जनतंत्र के प्रश्न सक्रिय हैं। यथास्थितिवादी से तीव्र असहमति रखने वाले इन कहानीकारों ने वर्ण-व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करते हुए आत्मा-परमात्मा, मोक्ष-पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक आदि के मोहक मुखौटों के पीछे छिपे ब्राह्मणवाद के असली चेहरे को बेनकाब किया।

इस इकाई के अंतर्गत संकलित कहानी 'लटकी हुयी शर्त' ने भी उत्पीड़न के पारंपरिक समाजशास्त्र से अलग जिस नये समाजशास्त्र के प्रतिपक्ष धरता प्रकट की है, उसमें

12.2 दलित कहानी का सौन्दर्यशास्त्र

ऐतिहासिक विकास क्रम ने विभिन्न कहानी आंदोलनों को संभव किया। आजादी के बाद के कहानी आंदोलनों में नयी कहानी, जनवादी कहानी, अकहानी, समकालीन कहानी आदि आंदोलनों की तरह ही 'दलित कहानी' का भी स्वरूप उभरा। पर यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि सौन्दर्य के प्रचलित प्रतिमानों के, पक्षधरों ने प्रायः कला मूल्यों के आलोक में इस आंदोलन के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया अपनाया या इसे खारिज़ करने की कोशिश की। यह ज़रूरी है कि दलित कहानी के सौन्दर्यशास्त्र का आकलन किया जाए।

12.2.1 दलित कहानी : पारंपरिक कहानी से अलगाव के धरातल

आज दलित कहानी हिन्दी साहित्य में सशक्त उपस्थित है। बीती सदी के आरंभिक दौर में आधुनिक कहानी लेखन प्रारंभ हुआ। तब से अब तक के कहानी साहित्य के इतिहास में जीवन-जगत के अनेक सवाल कहानी परिदृश्य में उभरे। अनेक कहानीकार ऐसे भी हुए, जिन्होंने पीड़ित-शोषित दलितों की चेतना को अपनी कहानी का आधार बनाया लेकिन प्रगतिशील चेतना के बावजूद वे भारतीय समाज में प्रचलित उस वर्ण-व्यवस्था पर, जिनके चलते समाज के एक बड़े वर्ग को जन्म से हीनतर और मौलिक अधिकारों से वंचित किया, गया, उसके मूलगामी चिंतन पर कठोर प्रहार नहीं कर पाए। ऐसे कहानीकारों की कहानियाँ अधिक-से-अधिक पापबोध पैदा कर आत्मशुद्धि की चेतना की वकालत करती थी। जबकि दलित कहानी फुले-आंबेडकर चिंतन/धारा से ऊर्जा ग्रहण करते हुए वर्ण और जाति को योग्यता और कौशल से अपदस्थ करने की समझ की पक्षधर हैं।

प्रगतिवादी चिन्तन से प्रेरित अनेक कहानीकारों ने अपनी कहानियों में दलित सवालों को उठाया। आलोचक कंवल भारती कहते हैं, इसमें संदेह नहीं कि बहुत से प्रगतिवादी लेखकों ने दलित सवालों पर लिखा है। प्रेमचंद इसके उदाहरण हैं ही और निराला, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर, नागार्जुन आदि बहुत से लेखकों के नाम भी इस संबंध में लिये जा सकते हैं। इन लेखकों के साहित्य को हम हिन्दी में दलित चेतना का साहित्य मान सकते हैं। पर, इधर दलित जीवन से संबंधित जो साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखा जा रहा है, वह उससे भिन्न है। दलित कहानी और दलित चेतना की कहानी में अलगाव को रेखांकित करते हुए भारती जी आगे कहते हैं, जहां दलित कहानी का उस भोगे हुए यथार्थ अन्य शब्दों में उनकी खुद की अभिव्यक्ति है, जिस पर डॉ. आंबेडकर के चिंतन का गहरा प्रभाव है। वहीं दलित चेतना के साहित्य में समाज सुधार की प्रेरणा सक्रिय है। इसके दो स्रोत हैं – गाँधीवाद और मार्क्सवाद। यही कारण है कि दलित कहानी समाज सुधार के स्थान पर दासता से मुक्ति और समताभाव की पक्षधर है।

दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों में ऐसे पात्रों का चित्रण किया है, जो शोषण, घृणा, बहिष्कार और जानलेवा गरीबी में रहते हुए, उसमें बदलाव के लिए संघर्ष करते हैं और सकारात्मक चिंतन से वैकल्पिक समाजशास्त्र की प्रस्तावना पेश करते हैं। अभिजात्यवादी चिंतक दलित कहानी पर आरोपों की झड़ी लगाते हैं, मसलन-दलित कहानी वर्ग भेद को बढ़ावा देती है, दलित कहानी सौंदर्य मानकों की दृष्टि से अधूरी है आदि-आदि। लेकिन ऐसे आरोप के समय वे भूल जाते हैं कि जिन नृशंसताओं और दमन का सामना वृहत्तर दलित समुदाय रोजमर्रा की जिंदगी में करता है, उसमें आक्रोश और विद्रोह का आ जाना लाजमी है। यथास्थितिवादी चिंतन की जड़ता पर तीव्र प्रहार करती दलित कहानियाँ

शोषण और उत्पीड़न के चित्रण के साथ उन कलात्मक मानकों को भी अर्जित करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं जो बदलाव की मानवीय चेतना से प्रेरित-संचालित हैं।

yVdh gbl 'kri %
i:°yknpn: nk l

12.2.2 दलित कहानी के प्रतिमान

दलित साहित्य के उदय की पृष्ठभूमि ने उसके प्रतिमानों का भी निर्धारण किया है। सैंकड़ों वर्षों से प्रचलित हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार दलितों की छाया, स्पर्श और वाणी वर्जित है। इस व्यवस्था के 'कर्मणा' उपलब्धि के सारे प्रतिमानों को खारिज़ कर जन्मना श्रेष्ठ के अतार्किक दर्शन को प्रतिष्ठित किया। अस्पृश्यों को बिना गुनाह के गुनाहगार मानने कहने के स्वाभाविक आचरण से भारतीय समाज संचालित होने लगा। दलित गाँव के बाहर बसें, धन संग्रह न करें, केवल गधे और कुत्ते को अपनी संपत्ति मानें, सोने के आभूषण नहीं पहनें, इस तरह के अनेक आदेश संहिताओं और धर्मग्रंथों में मौजूद हैं। इस अवस्था के खिलाफ कोई बगावत न हो, इसके लिए समाज में यह आदर्श स्थापित कर दिया गया कि 'यह व्यवस्था ईश्वर ने बनायी है।' फुले आंबेडकर की विचारधारा ने वृहत्तर दलित समाज को सैंकड़ों वर्षों की गुलामी का अहसास कराया। दलित कहानी ने इस विचारधारा के आलोक में अपने प्रतिमानों को निर्धारित किया। मराठी के प्रसिद्ध दलित साहित्यकार शरण कुमार लिम्बाले सत्यं, शिवं, सुन्दरम, की अवधारणा पारंपरिक को सत्य शिवम् सुन्दरम् की नयी अवधारणा से अपदस्थ करने की बात करते हैं। सत्यं, शिवं, सुंदरम, ये भेदभाव की कल्पनाएँ हैं, जिसके आधार पर आम आदमी का शोषण हुआ है। दरअसल बकौल लिम्बले, सत्यं, शिवं, सुंदरम, की धारणा तो सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए रची गयी साजिश है। उसकी परिभाषा बदलने की जरूरत है। उन्हें अधिक ऐहिक और सामाजिक करने की आवश्यकता है।

- मनुष्य सर्वप्रथम मनुय है यह 'सत्य' है।
- मनुष्य की स्वतंत्रता ही 'शिव' है।
- मनुष्य की 'मनुष्यता' ही 'सौंदर्य' है।

काल्पनिक सत्य, काल्पनिक शिव, काल्पनिक सौंदर्य ये सब मूर्खता की बातें हैं। विश्व में मनुष्य जैसी 'सत्य और सुंदर' दूसरी कोई चीज़ नहीं है इसलिए तो मनुष्य की समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की चर्चा होनी आवश्यक है। मेरे विचार मे यही चर्चा 'दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र' की चर्चा होगी।

दलित कहानी जिन सवाल को उठा रही है, वे सवाल हिन्दी कहानी संसार में पहले नहीं थे। दरअसल सवाल ही दलित कहानी की सबसे बड़ी रचनात्मकता है। दलित कहानी की भाषा आक्रोश और अन्याय के प्रतिकार की भाषा है। पारंपरिक आलोचना इस मुद्दे पर दलित कहानियों की भाषा पर आपत्ति करती है। आलोचकों का एक वर्ग इसे 'गाली साहित्य' तक की उपमा देता है। सदियों से अमानवीय नृशंसता के शिकार और गुलामी करने के लिए मजबूर पात्रों की भाषा में कलात्मकता से अधिक जोर आक्रामकता पर होगा, यह नितांत स्वाभाविक है। यही कारण है कि दलित कहानी की भाषा आक्रामक है। इस आक्रामकता के बिना दलित समाज के यथार्थ का चित्रण संभव नहीं।

दलित कहानी पारंपरिक समाज-व्यवस्था के प्रति असहमत है। मनु द्वारा प्रस्तावित समाज व्यवस्था के स्थान पर दलित कहानी समता और न्याय के प्रति अपनी पक्षधरता प्रकट करती है। दलित कहानी के बनते प्रतिमानों की चर्चा करते हुए, चर्चित आलोचक कंवल भारती उचित ही कहते हैं, 'दलित कहानी का मुख्य प्रतिमान सामाजिक परिवर्तन है, सामाजिक न्याय और सामाजिक समता का सिद्धांत है। वह डॉ. आंबेडकर की सामाजिक

क्रांति को अभिव्यक्ति देती है, जिसका उद्देश्य है समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व के मूल्यों का निर्माण करना और व्यवस्था को बदलना।'

दलित कहानियाँ गाँवों में सदियों से लादी उन मान्यताओं को खारिज करती हैं, जिनके चलते दलितों का व्यक्ति के रूप में स्वाभिमानपूर्वक जीवन गुजरना असंभव हो जाता है। प्रचलित व्यवस्था उनके इस बागी तेवर के प्रति निर्मम ढंग से पेश आती है। ऐसी किसी भी पहल को व्यवस्था बुरी तरह दंडित करती है दलित कहानियाँ इन प्रसंगों को अत्यंत मार्मिक ढंग से उठाती हैं। भारतीय गाँव दलितों के लिए ऐसे यातनागृह हैं, जिनमें बदलाव लाना काफी जोखिम भरा काम है। गाँव में दलितों के कई आतंक हैं - दंडी का आतंक, सामंती ताकती का आतंक, महाजनों का आतंक और इन आतंकों को महफूज़ रख दलित उत्पीड़न को कई गुना बढ़ाने वाले पुलिस वालों का आतंक। दलित कहानियाँ इन आयामों को कथावस्तु के रूप में चयनित करती हैं।

दलित कहानियाँ अभी विकासक्रम के आरंभिक दौर में हैं। ज्यादातर दलित कहानियों के तेवर आत्मकथात्मक हैं। उत्पीड़न, बहिष्करण, जाति देश के अलावा दलित जीवन के अन्य प्रसंग भी हैं, जिन पर दलित कहानीकारों का ध्यान कम ही गया है। संवेदना जगत में विस्तार और एकरसता के क्रम को तोड़ने के लिए उन प्रसंगों का कथावस्तु के रूप में चयन करना ज़रूरी है, पर दलित कहानियों ने हिन्दी कथा संसार में जिस हस्तक्षेप को संभव किया है, वह काफी महत्वपूर्ण है। हिन्दी कहानी में मार्क्स और गांधी के दर्शन की अनुगूँज उपस्थित थी, पर आंबेडकर के क्रांतिकारी दर्शन का आना बाकी था, जाहिरन उसे दलित कहानियों ने पूरा किया है। आइए, अब दलित कहानी के प्रतिमानों के आलोक में संकलित कहानी के विश्लेषण का प्रयास किया जाए।

12.3 प्रह्लादचंद्र दास का जीवन एवं कृतित्व

प्रह्लादचंद्र दास का जन्म झारखंड राज्य के धनबाद जिले के उदलबनी गाँव में 6 फरवरी 1950 को हुआ। उन्होंने बी. आई. टी. सिंदरी से इंजीनियरिंग की शिक्षा हासिल की। वे फिलहाल सेल के बोकारो स्टील प्लांट में उपमहाप्रबंधक के पद पर कार्यरत हैं। उनकी अनेक कहानियाँ हंस, युद्धरत आम आदमी, उत्तरा, नया पथ, कथादेश, झारखंड वाणी, अपेक्षा पत्रिकाओं में छपीं। कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं - 'पुटुस के फूल' और 'पराये लोग' शीर्षक से। प्रह्लादचंद्र दास की कहानियों में छोटानागपुर के दलित समाज का परिवेश मुखर हुआ है। उन्होंने छोटानागपुर की स्थानीय भाषा 'खोरठा' में कुछ कविताएँ भी लिखी हैं, जिनके अनुवाद चर्चित हुए हैं।

12.4 लटकी हुयी शर्त : दलित चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति

'लटकी हुयी शर्त' कहानी दलित चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति है। कथानायक गंगाराम को नंगाराम में तब्दील करने के लिए सवर्ण, मानसिकता नृशंसापूर्वक सक्रिय है। जाति-व्यवस्था के मजबूत गढ़ भारतीय गाँव के सवर्ण बालक गंगाराम को नंगाराम बनाने में सफल भी होते हैं। पर समय चक्र बदलता है। नंगाराम, गंगाराम से गंगा बाबू में तब्दील होता है। कथाकार प्रह्लादचंद्र दास रूपांतरण की प्रक्रिया को अत्यंत कलात्मक ढंग से रूपायित करते हैं।

गंगाराम का गाँव दो भागों में बंटा है। ठाकुरों के घरों की संख्या महज प्रंदह-बीस है। दूसरी तरफ सरकारी शब्दावली में जिसे कमजोर वर्ग कहते हैं, यानी पासी, दुसाध, चमार, अहीर आदि दलित जातियों के डेढ़ सौ घर हैं। पर गाँव में ठाकुरों का जबर्दस्त दबदबा है। गंगाराम दुसाध जाति का है। यह भारतीय वर्ण-व्यवस्था ही है, जिसने यह सामान्य सामाजिक समझ को स्थापित कर दिया है कि तीसरे वर्ण के लोगों के जीवन की परम सार्थकता यही है

कि वे ऊपर के वर्णों, जिनमें रामकिसुन बाबू (क्षत्रिय) भी हैं, की सेवा करते हुए अगले जनम को सार्थक करें। ज्यादातर वे बेगार खटें, हाड़ तोड़ परिश्रम के बदले कभी-कभी कुछ ऊपर के वर्णों द्वारा तथाकथित 'दया' के वशीभूत हो उनके द्वारा फेंके गये टुकड़े को जीवन का दिव्य सौभाग्य मानते हुए उन्हें ग्रहण करने का पुण्य अर्जित करें। ऐसे जीवन में अच्छा भोजन तो चमत्कार है, पेट पर भोजन भी यदा-कदा ही मिलता है। बालक गंगाराम जब रामकिसुन बाबू की लड़की की शादी में भोज खाने बैठता है तो खाता ही जाता है। भूख और रूखा सूखा भोजन के लिए अभिशप्त जीवन में यह अवसर गंगाराम के लिए दरअसल वरदान की तरह था। साथ ही बालक गंगाराम के मन में यह भ्रम बैठा हुआ था कि वह खा-खा कर जब मोटा और ताकतवर बनेगा तो चिढ़ाने वाले सवर्ण बच्चों से लड़ेगा। समय चक्र ऐसा पलटता है कि गंगाराम के तीन बेटे आरक्षण व्यवस्था के कारण नौकरी पाते हैं। गंगाराम समर्थ हो जाता है उसकी समझदारी में हरखू चमार के सलाह के चलते काफी इजाफ़ा होता है। गाँव की पारंपरिक व्यवस्था में वह हस्तक्षेप करता है। रामकिसुन बाबू की पोती की शादी में वह इसी शर्त पर दलितों को शामिल होने के लिए प्रेरित और गोलबंद करता है कि चूंकि दलित भी सवर्णों की तरह ही आमंत्रित अतिथि के रूप में उत्सव में शरीक होंगे, लिहाजा वे उन्हीं की तरह अपना जूठन (पत्तल) खुद नहीं उठाएंगे। अन्य शब्दों में उन्हें भी वही सम्मान मिलना चाहिए जो सवर्णों को परंपरागत रूप से हासिल है। जाहिर सी बात है इसे रामकिसुन बाबू ही नहीं अन्य सवर्ण भी अस्वीकार करते हैं। सवर्णों के सामूहिक उत्सव में दलितों की बतौर अतिथि भागीदारी बंद हो जाती है, दूसरी तरफ सवर्ण ने भी दलितों के यहां से उत्सव के मौके पर आए सूखे (परंपरानुसार: दलितों के घर सवर्ण भोजन में शामिल नहीं होते, वे सूखा अनाज व अन्य भोजन सामग्री उत्सव के अवसर पर सवर्ण के घर पहुँचाते हैं) को लेने से इनकार कर दिया। बरसों बीत जाते हैं, पर शर्त अपनी जगह लटकी रहती है।

इस घटना के बाद श्रेष्ठताबोध के दंभ में फूले सवर्ण गंगाराम से काफी चिढ़ते हैं, लेकिन वे समर्थ गंगाराम का कुछ अहित करने की स्थिति में नहीं बचते। अलबत्ता यह कहकर अपनी खीझ ज़रूर निकालते हैं कि सदियों पुराने भाईचारे को गंगाराम ने खत्म कर दिया। कहानीकार ने बहुत खूबसूरती से सवर्ण पोषक व्यवस्था पर सवालिया निशान उठाया है। बिना अतिकथन का शिकार हुए कहानी यह समझ प्रस्तावित करती है कि कैसे समाज का मलाईदार तबका अपने दुर्ग में दलित हस्तक्षेप को मेलजोल, भाईचारे को खत्म करने वाली अवांछित और अहितकर व्यवस्था आदि के जुमले में पेश कर सवर्ण केन्द्रित व्यवस्था की तरफदारी करता है। कहानी की दो पंक्तियों में इस व्यंग्य के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करता है, 'गंगाराम ने पूरे इलाक़े को बर्बाद (?) कर दिया। कितने मेलजोल से भाईचारे के साथ रहते थे लोग। गंगाराम की सफ़ेद मूँछें फड़फड़ाने लगती हैं।'

12.5 लटकी हुयी शर्त : कथावस्तु

'लटकी हुयी शर्त' कहानी हिन्दी की पारंपरिक यात्रा में हस्तक्षेप का प्रयास करती है। दूसरी तरफ कथायात्रा की दृष्टि से भी इसमें नयापन है। दलित साहित्य की हालिया तस्वीरों के मद्देनज़र प्रायः दलित लेखकों पर यह आरोप लगाया जाता है कि, 'एकमात्र उत्पीड़न को ही कहानी रचना का उत्प्रेरक मानने की ज़िद दलित कहानियों को एकरस बना देती है। इस प्रवृत्ति से दलित जीवन के दूसरे पहलुओं की उपेक्षा होती है। 'लटकी हुयी शर्त' संक्रमण के इस दौर में पुरानी वर्ण-व्यवस्था न जाने की ज़िद पर अड़ी है और नयी सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को भारतीय समाज ने पूरेपन के साथ अभी स्वीकार नहीं किया है। कहानी इसे कलात्मकता के साथ प्रकट करती है। कहानी का शीर्षक इसके इस अभिप्राय को बखूबी प्रकट करता है।

कथानायक गंगाराम दुबला-पतला मरियल-सा लड़का है, जिसकी जाति दुसाध है। पारंपरिक वर्ण-व्यवस्था में यह जाति शूद्र वर्ग में है। जिस गाँव में गंगाराम रहता है, उस गाँव में दुसाध समेत अन्य दलित जातियों के डेढ़ सौ घर हैं, जबकि ठाकुर (क्षत्रिय) के पंद्रह-बीस घर। जनबल की दृष्टि से दस गुना कम आबादी के बावजूद गाँव ठाकुरों के निर्णय के अनुसार ही चलता है। गाँव की इस दुर्दान्त गरीबी के लिए बेगार कामों के लिए दलितों से जोर जबरदस्ती या परिश्रम के अनुकूल काफी कम मेहनताना देना है, उसके मूल में ठाकुर ही हैं। ठाकुर शोषण तो करते ही थे, गाहे-ब-गाहे दलितों को इस्तेमाल वे अपने मनोरंजन के लिए भी करते थे। ठाकुर रामकिसुन अपने एवं घर आए अतिथियों के लिए गंगाराम दुसाध का उपयोग करते हैं। कहानी इस दृश्य को बेहद कलात्मक ढंग से प्रकट करती है।

‘ठाकुर की बेटी की शादी के मौके पर खाने के लिए गंगाराम भी बैठता है। वह खाने में इतना मगन हो जाता है कि काफी देर तक खाता ही रहता है। यहाँ तक कि कई पंगतें उठ गयीं, पर वह खाता ही रहा। जब ठाकुर रामकिसुन को पता चलता है तो वह कुर्सी डलवाकर गंगाराम के सामने बैठ जाता है। परोसने वालों को खास हिदायत दी जाती है कि वे खाना दिलाते रहे। गंगाराम ने कृतज्ञतापूर्वक रामकिसुन बाबू को देखा और फिर खाने में जुट गया। खाये भी क्यों नहीं, उसे ऐसा खाना तो बरस दो बरस में नसीब होता था। रामकिसुन बाबू के अस्तबल में काम कर रहे गंगाराम के पिता तक जब यह खबर पहुँचती है तब वह काफी लज्जित होता है और साथ काम कर रहे हरखू चमार को गंगाराम को लाने के लिए भेजता है। हरखू ने पंगत में बैठे गंगाराम के उस हाथ को पकड़ा जिससे वह कौर उठा रहा था। रामकिसुन बाबू के मनोरंजन में बाधा पड़ी। पर शादी के मौके की नजाकत देख बिगड़े नहीं, अलबत्ता यह ज़रूर कहा कि, जाओ अब खाओगे भी कैसे। चमार ने जो छू दिया।’ यह कहानी का मार्मिक क्षण है। अचरज की बात यह है कि गंगाराम को भी यह महसूस होता है कि वह चमार का छुआ कैसे खाएगा? वह तो ऊँची जात का है। अबोध गंगाराम को भी वर्ण-व्यवस्था ने अनुकूलित कर लिया है, वह भी जाति श्रेष्ठता के दंभ का शिकार है, जबकि जातिगत उत्पीड़न उसके जीवन का विषादमय सच है। कहानीकार प्रह्लादचंद्र दास सपाट अभिव्यक्ति या रोमानी भावुकता से कथा संरचना नहीं बुनते। वर्णवादी समाज की जटिलताएँ भी कारगर तरीके से कथावस्तु में पिरोयी जाती हैं। गंगाराम जाति श्रेष्ठता के अहं चित्रण से हम इसे बखूबी समझ सकते हैं।

जब हरखू पूछता है कि वह क्यों इस तरह जलील होकर खा रहा था? इस गंगाराम पीड़ा बयान करते समय, जिस संकल्प का परिचय देता है, उसमें दृढ़ता के साथ वह चेतना भी नज़र आती है जो उसके जीवन में अंततः वर्णवादी दुर्ग में हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित करती है। वह कहता है, “काका, मैं सिर्फ पेट भरने के लिए नहीं खाता। मैं खा-खा कर इतना मोटा, इतना ताकतवर हो जाना चाहता हूँ कि मुझे जो लड़के रात-दिन चिढ़ाते रहते हैं गंगाराम - नंगाराम कहके - मैं अकेले उन सबको सबक सिखा सकूँ।

समय-चक्र पलटता है और धीरे-धीरे एकतरफ़ ठाकुरों की आन-बान -शान जहाँ तिरोहित होने की स्थिति में आ जाती है, वहीं गंगाराम के तीनों बेटे सरकारी मुलजिम बन जाते हैं। गंगाराम इलाके में समृद्ध आदमी के रूप में मशहूर हो जाता है। गाहे-ब-गाहे ठाकुर भी उनसे कर्ज लेने आने लगते हैं।

कहानीकार प्रह्लादचंद्र दास के सावधान कथा विन्यास का एक दृश्य पुनः कहानी में उभरता है। गंगाराम का बेटा शिवचरण दुखहरण बाबू (ठाकुर) की बेटी के साथ खलिहान में नज़र आता है, पर काका, बाबुओं ने एक समय हमारी बहु-बेटियों के साथ भी ..।’ इस

पर हरखू काका बदले की इस शैली को अनुचित ठहराते हुए, जिस प्रतिकार की सलाह देते हैं, वह तथाकथित वर्ण आभिजात्य पर ऐसा हमला साबित होता है, जिसके दूरगामी नतीजे के रूप में ज्यादा मूल्यवान संदेश मिलता है। हरखू काका सलाह देते हैं समय बदलता है और अब हम लोग ठाकुरों के यहाँ नौकर नहीं है, लिहाजा उनके यहाँ आमंत्रण पर खाने जाते हैं तो सम्मानपूर्वक जाएं। गंगाराम रामकिसुन बाबू की पोती की शादी के मौके पर आयोजित भोज के दौरान एक शर्त रखता है, ध्यान रहे यह वही रामकिसुन बाबू है जो ठाकुरों के सिरमौर है और जिन्होंने बालक गंगाराम की बचपन में फजीहत की थी उसकी शर्त पर जब रामकिसुन बाबू पूछते हैं, 'मेरी ही पोती की शादी पर ऐसी प्रतीज्ञा क्यों?' 'गंगाराम जवाब देता है, 'यह सिर्फ संयोग की बात है की आपकी पोती की शादी है। और हम खाने से कहाँ इनकार करते हैं? शर्त यही है कि खाने के बाद हम अपना पत्तल नहीं उठाएँगे। नेउत कर ले जाते हैं तो सचमुच सम्मान दीजिए और यह सम्मान अगर आपने दिया तो सबने दिया - क्योंकि आप तो गाँव के सिरमौर हैं।'

जाहिर सी बात है, ठाकुरों के आभिजात्य को यह शर्त नागवार गुजरती है। इधर गंगाराम की सामर्थ्य और हैसियत के चलते ठाकुर चाह कर भी उसका अहित नहीं कर पाते। शांत सतह के नीचे शोषण-उत्पीड़न से त्रस्त लोगों का सामूहिक लावा गंगाराम के साथ गोलबंद हो जाता है, यानी ठाकुरों के अतिरिक्त गाँव के सभी बाशिन्दे (दलित) गंगाराम के साथ हो गए। अब माजरा यह हो जाता है कि गाँव के दलित सवर्णों के घर जाकर काम जरूर कर देते हैं। पर खाना नहीं खाते। यह शर्त लटकी रहती है और दोनों पक्ष के लोग एक-दूसरे के काम तो आते हैं, पर एक-दूसरे के यहाँ भोजन नहीं करते। ठाकुरों को दलित जो 'सूखा' सामूहिक भोज के मौके पर परंपरागत रूप से भेजते थे, वह भेजना बंद हो जाता है।

सवर्ण-आभिजात्य प्रेरित समाज को यह घटना काफी नागवार लगती है। कथाकार इस पूरे घटनाक्रम से उभरे मर्म को व्यंग्य से और मारक बना देते हैं। सवर्णों की सोच कहानी में इस तरह अभिव्यक्त होती है, 'कौन करेगा मंजूर? एक कोहरिन थी, रानी बन गई तो बैंगन को टैंगन ही कहने लगी।'

'गंगाराम ने पूरे इलाके को बर्बाद (?) कर दिया। कितने मेल-जोल से भाईचारे के साथ रहते थे लोग। गंगाराम की सफ़ेद मूँछे फड़फड़ाने लगती हैं।'

जाहिर है कहानी कसमसाते बहुजन के संघर्ष और स्वाभिमान के सपने को जिस अंदाज़ में पेश करती है, वह मौजूदा कथा समय में सार्थक ही नहीं, बल्कि मूल्यवान हस्तक्षेप है।

12.5.1 गाँव की सामाजिक संरचना और सवर्ण श्रेष्ठता

भारतीय गाँव की पारंपरिक संरचना में सवर्ण वर्चस्व के अनेक आयाम बेहद आसानी से देखे जा सकते हैं। यही कारण है कि दलित चिंतन के केन्द्रीय व्यक्तित्व भीमराव आंबेडकर गाँवों को दलित आबादी का यातनागृह कहा करते थे। गाँव की संरचना इस तरह से बनी है, जिसमें सुविधा और श्रेष्ठता के सभी प्राकृतिक और कृत्रिम स्रोतों पर सवर्णों का आधिपत्य है। आर्थिक तंत्रों का विकास इस तरह किया गया है कि दलित आबादी हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद दाने-दाने के लिए सवर्णों पर निर्भर रहती है या फिर मोहताज रहती है। कठोर सच्चाई यह है कि सवर्णों की सम्पन्नता का कोई संदर्भ दलित आबादी की मेहनत और समर्पण के बिना संभव नहीं। उस पर तुरा यह है कि दलित आबादी सिर्फ उपलब्धियों से वंचित ही नहीं है, अपितु उन पर उपेक्षा और उत्पीड़न के सभी शिकंजे कसे हैं। इसे स्वाभाविक और सही साबित करने के लिए भाग्यवाद, और पुनर्जन्म की कुहेलिका है। भारतीय सामाजिक चिंतन में आंबेडकर के अभ्युदय ने दलितों को गुलामी का न सिर्फ

अहसास कराया बल्कि उससे जूझते हुए मुक्ति के सपने भी दिखाए। लंबे संघर्ष के बाद भारतीय गाँवों में परिवर्तन की बयार चली है। यह कहानी उसी संक्रमण को जीवंत अहसासों के साथ प्रकट करती हैं।

वर्णवादी सोच की गिरफ्त में दलित आबादी भी है। गंगाराम जैसे छोटे बच्चे के मन में यह अहसास स्थापित कर दिया गया है कि वह जाति का दुसाध है, लिहाजा चमार का छुआ नहीं खाना चाहिए। उसके जीवन में परिवर्तन का एक धरातल इस जड़ चिंतन को अपदस्थ कर देता है। जब वह ठाकुरों के समक्ष स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने के सिलसिले में, निमंत्रण भोज के बाद सवर्णों की तरह ही पत्तल न उठाने की शर्त रखता है, तब उसकी इस मुहिम में गाँव के दुसाध ही नहीं, पारसी, चमार, अहीर आदि सभी शामिल होते हैं। गंगाराम को यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है। कहानी खूबसूरती से यह संकेत करती है कि उसमें 'वर्णवाद' राख की तरह बिखरता नज़र आता है। उसके सवर्ण प्रतिशोध को सार्थक आयाम में रूपांतरित करने में चमार हरखू ही महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसे कहानी में दो स्थानों पर प्रकट किया गया है - एक उस समय जब बालक गंगाराम को चिढ़ाते सवर्ण बच्चों की टोलियों से सार्थक प्रतिशोध के लिए मजबूत बनने की प्रेरणा हरखू काका द्वारा दी जाती है। दूसरी उस समय जब से सामूहिक भोज में सम्मानपूर्वक भाग लेने की शर्त के लिए भी उन्हीं के द्वारा प्रेरित किया जाता है। कहना न होगा 'लटकी हुयी शर्त' कहानी की पूरी संरचना गाँव की सामाजिक बनावट और सवर्ण श्रेष्ठता को बखूबी चित्रित करती है।

12.5.2 o.k-J"Brk dk nxl vkj nfyr pruk

'लटकी हुयी शर्त' कहानी में वर्णश्रेष्ठता के दुर्ग और उसमें दलित हस्तक्षेप को अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। कहानी में ठाकुर रामकिसुन वर्णश्रेष्ठता के दुर्ग के रूप में चित्रित है तो गंगाराम दलित हस्तक्षेप की ऊर्जा के साथ मौजूद है। जो रामकिसुन ठाकुर बालक गंगाराम का विनोद के एक साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं, उन्हीं ठाकुर रामकिसुन को जीवन के उत्तरार्ध में गंगाराम की शर्त का सामना करना पड़ता है। दलित हस्तक्षेप की यह व्यक्तिगत चेतना सामूहिक चेतना में रूपांतरित हो जाती है। उसकी इस शर्त के साथ गाँव के सभी दलित लामबंद हो जाते हैं।

12.6 लटकी हुयी शर्त : असहमति और भविष्य दृष्टि का प्रश्न

प्रह्लादचंद्र दास की यह कहानी असहमति के सुरों के साथ भविष्य दृष्टि के प्रश्न पर भी पाठकों को विमर्श के लिए आमंत्रित करती है। अतीत की जिन प्रेतछायाओं ने भारत की बहुसंख्यक आबादी को जन्मना अश्रेष्ठ नहीं अछूत भी करार दिया है, उनके खिलाफ संघर्ष कर उन्हें अलविदा करने पर ही भारतीय लोकतंत्र का भविष्य सुरक्षित हो सकता है। जिस तथाकथित शांति में बहुसंख्यकों के दबने और कराहने की नींव मुकम्मल हो उसे ढहाने में ही समझदारी है। बहुसंख्यकों की नीतिगत धारणा को बदलना आवश्यक है क्योंकि वे जिसे (अछूत) दलितों की सहमति मानते हैं व उसे असहमति में बदलने से ही जाति व्यवस्था की नींव ढहने की संभावना है। बेशक इस प्रक्रिया में पहले से सुविधाप्राप्त लोगों के सुखों की भित्ति दरकेगी और उनकी खीझ तथा बौखलाहट बहुसंख्यक की बदशक्ल अतीत को सुंदर जुमले में पेश कर 'वर्तमान के वाजिब संघर्ष को अनुचित करार देगी। 'लटकी हुयी शर्त' कहानी में जब गंगाराम पारंपरिक व्यवस्था से असहमत होता है, तब उस प्रक्रिया पर भी सवर्णों की ऐसी ही प्रतिक्रिया होती है। कहानी में वह दृश्य इस तरह उभरा है :

‘कौन करेगा मंजूर?’ एक कोइरिन थी, रानी बन गयी तो बेंगन को ठेंगन ही कहने लगी।

‘गंगाराम ने पूरे इलाक़े को बर्बाद कर दिया! कितने मेलजोल से भाईचारे के साथ रहते थे लोग! गंगाराम की सफ़ेद मूँछे फड़फड़ाने लगती हैं।’

कहना न होगा इस असहमत वर्तमान में उस भविष्यदृष्टि की भी अनुगूँज है जो समतामूलक समाज के पक्ष में उठी है।

12.7 सारांश

मौजूदा भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है। दलित प्रश्न मुख्यधारा के उस विमर्श में रूपांतरित हो चुका है, जिसके बिना भारतीय समाज के स्वरूप पर चर्चा संभव नहीं है। पारंपरिक वर्णवाद पर दलित चेतना का प्रहार जारी है। यह सही है कि इस चेतना के चलते एक तरह की सवर्ण बौखलाहट भी उभरी है, जिसे आए दिन के दलित उत्पीड़न प्रसंगों में हम देखते हैं। उसी तरह सदियों से दबी और उत्पीड़न की शिकार दलित जाति भी कई सवर्ण प्रतिशोध में अतिरंजना का शिकार हो रही है। ‘लटकी हुयी शर्त’ कहानी में उल्लिखित चेतना आसानी से देखी जा सकती हैं। नायक गंगाराम का संकल्प और हरखू काका का प्रोत्साहन दलित सवाल को बखूबी उभारता है। दूसरी तरफ अतिरंजित दलित प्रतिशोध को हरखू काका द्वारा समरस समाज की लड़ाई के वृहत्तर सरोकारों में रूपांतरित भी किया जाता है।

‘लटकी हुयी शर्त’ पारंपरिक कहानी के प्रचलित सौंदर्य और आनंद की अमूर्त चेतना पर प्रहार करती हुयी दलित सवाल को उभारती है। कहानी जिस भविष्य दृष्टि का संकेत करती है वह मानवीय और लोकतांत्रिक भारत की अनिवार्य ज़रूरत है। उत्पीड़न के एकरस चित्रण से अलग यह कहानी दलित कहानियों में - अपनी अलग पहचान भी कायम करती है, यह इसकी एक और विशेषता है।

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 'वैतरणी' कहानी का कथानक और मूल संवेदना

13.3 'वैतरणी' में दलित समाज की पीड़ा

13.4 'वैतरणी' में दलित जीवन और राजनीतिक दशा

13.5 'वैतरणी' में दलित हित और धार्मिक परंपरा का टकराव

13.6 'वैतरणी' में शिल्प और भाषागत विशेषताएँ

13.7 सारांश

13-0 mÍ';

'वैतरणी' कहानी दलित लेखिका नीरा परमार की चर्चित कहानी है। कहानी डोम समाज की है, जो दलित वर्ग की एक उपजाति है, जिनके प्रमुख कार्य है श्मशान भूमि में शवदाह या दफन के लिए सामग्री तैयार करना है। लेकिन खुद जिन्दगी की बुनियादी ज़रूरत से वंचित बना रहता है। 'वैतरणी' मूलतः एक मिथकीय नदी का नाम है। हिन्दू धर्म में ऐसा माना जाता रहा है कि मृत्यु के बाद इसको पार करने के बाद ही व्यक्ति को मोक्ष मिलता है। लेखिका ने अपनी कहानी के माध्यम से इस मिथक को नया अर्थ दिया है। यह दर्शाया है कि मरना महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि जीना और मानवीय गरिमा के साथ जीना अधिक महत्वपूर्ण है। इस कहानी के पात्र इसी गरिमा के लिए संघर्ष करते हैं। कहानी में 'चापाकल' की माँग वास्तव में अपने मानवीय अस्तित्व की माँग से जुड़ी हुई है। 'वैतरणी' जैसे मिथकीय नदी को एक प्रतीक के माध्यम से कहानीकार ने दलित जीवन के सपनों, ज़रूरत और उसके लिए किए गए संघर्ष को उकेरा है। यह कहानी दलित जीवन और राजनीति के संबंध को दर्शाती है। आजादी के बाद जिस राजनीतिक तंत्र पर दलितों के उत्थान का दायित्व था, वह अपने अंधविश्वास तथा परंपराओं के जाल में फँसकर दलितों की उपेक्षा करती है। कहानी के अध्ययन के पश्चात् आप:

- दलित कथा परंपरा से परिचित होंगे;
- वर्तमान राजनीतिक हालात और दलित दशा को समझ पाएँगे;
- मानवीय गरिमा के लिए दलित संघर्ष के तेवर को समझ सकेंगे।

13-2 ALrkouk

दलित स्त्री रचनाकार में नीरा परमार एक उभरता हुआ नाम है। दलित जीवन के दुःख, दर्द, शोषण, समाज और व्यवस्था द्वारा उपेक्षा इनकी कहानियों का बीज मंत्र है।

युवा कहानीकार नीरा परमार का जन्म 3 मई 1950 ई. को जालना, महाराष्ट्र में हुआ। उन्होंने हिन्दी में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा वर्तमान में निर्मला महाविद्यालय, राँची में हिन्दी की प्राध्यापिका हैं।

नीरा परमार की कहानियाँ और कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। उनकी पुस्तक 'जंगल की आग' कविताओं का संग्रह है। इस लोकतांत्रिक समाज व्यवस्था में भेदभाव को दर्शाती इनकी कहानी 'वैतरणी' काफी चर्चित हुई है। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था के द्वारा शुरू हुई गैर-बराबरी की व्यवस्था समाज में ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इसी असमानता की मार्मिकता को दर्शाती है कहानी 'वैतरणी'। इसमें कहानीकार दलित जीवन के त्रास को बड़ी ही सहज भाषा में उकेरती हैं। कहानी अंत में वैचारिक और व्यावहारिक स्तर पर एक प्रश्न छोड़ जाती है — जो इसे पाठों से अलग करती हुई एक मार्मिक छाप छोड़ जाती है।

13-2 ^o'rj.kh^ dgkuh dk dFkkud vkj ey lonuk

नीरा परमार द्वारा लिखित कहानी 'वैतरणी' अपने कलेवर में छोटी ज़रूर है। लेकिन एक गहरी भावभूमि को विस्तार देती है। या यूँ कहें कि — 'देखन में छोटन लगे, घाव करे गम्भीर' जैसी उक्ति को चरितार्थ करती है।

कहानी के आरंभ में जेठ की गर्मी में श्मशान-भूमि के दृश्य के सजीव चित्रण के साथ ही थोड़ी दूर पर बसी डोम-बस्ती की बेहाली और एकाकीपन का जीवंत चित्रण भी बड़ी सहजता से किया है लेखिका ने। इस सूने वातावरण में हरकत तब होती है जब विधायक काशीनाम अपने बड़े भाई के दाह-संस्कार के लिए श्मशान घाट आते हैं। शवदाह सम्पन्न करने वाले मंगतूराम ने इस क्रियाकर्म से पहले इलाके के प्रभावशाली विधायक के सामने अपनी बस्ती की बदहाली पर ध्यान देने की हिम्मत जुटाई। तपती दोपहर में उसकी बस्ती की औरतों को मीलों दूर के गंदले पोखरे का पानी लाना पड़ता था। श्मशान-घाट की मरम्मत के लिए भी कई अर्जियाँ दी गई थीं, लेकिन कुछ नहीं हुआ। इस हिम्मत जुटाकर अपनी बात कहने के लिए मंगतूराम को विधायक के चमचों की ओर से गाली भी सुनना पड़ता है। विधायकजी जो शोक में डूबे आज माया-मोह, अंहकार से ऊपर उठ चुके थे, उन्होंने मंगतू से समस्या जानना उचित समझा, जिस पर मंगतूराम ने कहा — "साहेब, अब इस बस्ती में नहीं रहा जाता कहीं कोई सुनवाई नहीं, सरकारी दफ्तर में अरज़ी देते-देते गोड़ टूट गए। आप तो दयावान हैं, कुछ पानी का इन्तज़ाम हो जाता तो बस्ती के लोग असीस देते।" इस पर विधायकजी दरखास्त लेकर मिल लेने जैसा आश्वासन देते हैं, और अभी के दाह-संस्कार को निपटाने का संकेत देते हैं।

पहली बार इतना मीठा आश्वासन पाकर भोला मानस मंगतूराम विधायक जी को साक्षात् ईश्वर मान बैठा। साथ ही रोज-रोज के रोजी-रोटी वाले काम को भी आज बड़े श्रद्धा-भाव से निपटाया। निर्लिप्त भाव से मुर्दे जलाने की शिक्षा-दीक्षा उसे बाप-दादाओं से मिली थी। यह पेशा उसकी पसंद-नापसंद से नहीं जुड़ा था, बल्कि पीढ़ियों से चला आ रहा पेशा उस पर थोप दिया गया था। शायद कोई और काम कर पाने के लिए योग्यता अर्जित करने का उसे अवसर ही नहीं मिला। इस काम को वह बड़े निर्विकार भाव से करता है। केवल एक बार वह जीवन में मुर्दे को देखकर भावुक हुआ था — वह एक नन्हीं बच्ची की लाश थी, जो एक वहशी दरिंदे की हवस का शिकार हो गई थी।

मंगतूराम एक संवेदनशील व्यक्ति है, जिसके पास प्रबल यथार्थबोध है। यथार्थ का अर्थ विषमता के बोध से जुड़ता है। कहते हैं कि दुनिया विरोधी-युग्मों से बनी है — लाभ-हानि, रात-दिन, शत्रु-मित्र, जय-पराजय और सबसे महत्वपूर्ण जीवन-मृत्यु। भारतीय समाज में इसे अमीर-गरीब के रूप में देख सकते हैं। मंगतूराम को शहर के अमीरों की चकाचौंध के बीच अपनी बस्ती में गरीबी का अंधेरा और भी गहरा नज़र आता है। इस दुःख से उबरने के लिए ही वे विधायक के पास चापाकल की प्रार्थना लेकर गया।

कुछ दिन बीत गए। विधायक जी भाई के अंतिम संस्कार से जुड़े सभी कर्मकाण्ड और रस्म पूरी कर चुके थे। इन सबसे ब्राह्मणवादी संस्कारों में उनकी गहन आस्था झलकती है। अब पुनः राजनीति की दिनचर्या पर वापस आने लगे थे। इधर मंगतूराम और उसके लोग चापाकल को लेकर चिन्तित थे। वे विधायक से मिलकर उन्हें औपचारिक दरखास्त देना चाहते थे, लेकिन दरबान उन्हें फटकने नहीं देता है। किसी तरह से सब विधायक के पास पहुँच जाते हैं। उन्हें दरखास्त पेश करते हैं। विधायकजी को तो पहले कुछ याद नहीं आया, लोगों ने जब श्मशानघाट पर हुई बात याद दिलाई, तब उन्हें ध्यान आ गया। लेकिन अब जगह और स्थितियाँ बदल चुकी थीं। बड़े भाई की मौत से उपजा नश्वरता बोध और वैराग्य भाव अब शांत हो गया था। वे अब पुराने घाघ राजनीतिज्ञ के रूप में वापस आ गए। वे मंगतूराम की बात पर सहानुभूति तो जताते हैं लेकिन उस पर तुरंत निर्णय नहीं लेते हैं। जब मंगतूराम और उसके लोग विधायक की सहानुभूति को सहमति समझ कर खुश हो जाते हैं – “मंगतूराम और साथ के लोगों की आँखें चमक उठीं। झुँझलाए दरबान और दूसरे लोग भी उन सबको गहरी नज़र से देखने लगे। मंगतूराम को बँगले में घुसने में जितना तनाव झेलना पड़ा था, अब वह बड़ी सहजता से गेट बंद कर चापाकल की तेज धार के मीठे सपने के साथ लौट गया।” लगा कि बस्ती वालों का सपना पूरा हो गया लेकिन कहानी एक नया मोड़ ले लेती है। ब्राह्मण का आगमन होता है। विधायक के पास राजनीतिक सत्ता है; कल यह सत्ता खत्म भी हो सकती है। लेकिन, ब्राह्मण के पास धार्मिक सत्ता है, जो सनातन काल से है। वह हर काल में राजनीतिक सत्ता का स्वाभाविक सहयोगी रहा है। फिर विधायकजी की बिसात क्या है? पण्डितजी को भी चापाकल की आवश्यकता है, लेकिन उनकी आवश्यकता जात-कुजात के स्पर्श से अपनी पवित्रता बचाए रखने की है। वर्ना पीने का पानी तो उन्हें मिल रहा है। वे चाहते हैं कि चापाकल उनके आँगन में लग जाय, ताकि पण्डितानी को सभी जाति के लोगों के साथ लाइन न लगानी पड़े। इस पवित्रता की रक्षा के एवज में वे असीस देंगे, जिससे विधायक के बड़े भइया वैतरणी पार कर जाएँगे, उनका उद्धार हो जाएगा। एक ओर चापाकल के लिए पूरी बस्ती है तो दूसरी ओर पण्डितजी। एक के पास लोकतंत्र का संख्या बल है, तो दूसरे के पास धर्म का बल है। कहानी अंत में खुलकर नहीं बताती लेकिन संकेत दे देती है कि फैसला ब्राह्मण के पक्ष में हुआ है। इस फैसले में धार्मिक वर्चस्व की जीत है और लोकतंत्र की हार है। कहानी ऐसे अंत के साथ धर्म के वर्चस्व और राजनीति की भेदभावपूर्ण नीति तथा दलितों, शोषितों, वंचितों के प्रति अवहेलना, संवेदनहीनता रवैये को स्पष्ट करती है। समाज के सबसे पिछड़े वर्ग की हताशा, निराशा और नकारे जाने के अहसास को महसूस किए जाने को संवेदनशीलता से उजागर करने में सक्षम है।

13-3 ^orj.kh^ e nfyr lekt dh ihMk

‘वैतरणी’ कहानी में डोम समाज की जिन्दगी को उभारा गया है। गाँव तो गाँव शहरों में भी दलित समाज की बस्ती अलग-थलग बसाई जाती है। यहाँ डोम समाज की बस्ती श्मशानघाट के इर्द-गिर्द सिमटी हुई है। इस घाट पर सभी लोगों का अंतिम क्रियाकर्म होता है; लोक से विदाई और परलोक प्रस्थान की तैयारी के लिए तरह-तरह के कर्मकाण्ड होते हैं। मृतक के परिजन के लिए यह भावुक क्षण होता है, लेकिन चिता सजाने वाला मंगतूराम इन सबसे मुक्त रहता है। मुर्दे जलाना उसका पेशा है, “मुर्दे को जलाना उसकी रोजी रोटी थी। जिस प्रकार नौकरी करने वाले के लिए अपने रोज-रोज के काम में व्यक्तिगत रुचि-अरुचि का सवाल नहीं होता, उसी प्रकार मंगतूराम के लिए भी रोज आने वाले मुर्दे से कोई खास सरोकार नहीं होता। उसने यह काम बाप-दादाओं से सीखा था।”

यह काम उसने अपनी पसंद-नापसंद के आधार पर नहीं बल्कि विरासत से पाया था। जाति प्रथा एक प्रकार का श्रम-विभाजन है, लेकिन परेशानी इस बात की है कि यह श्रम-विभाजन वंशानुगत हो जाता है। इस कारण मंगतूराम जैसे व्यक्ति के लिए अपनी पसंद का पेशा अपनाने की गुंजाइश नहीं रह जाती है।

‘वैतरणी’ कहानी में दलित बस्ती शहर का ही हिस्सा है, लेकिन इसमें परिवर्तन की कोई आहट नहीं है। आधुनिक शहर पूँजीवादी व्यवस्था के गढ़ होते हैं लेकिन पूँजीवादी गतिविधियों जैसे — उत्पादन, बाजार, विपणन यंत्र, उद्योग, व्यापार, शिक्षा, संचार आदि के निशान इस बस्ती में दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ते हैं। यह बस्ती लगता है कि हजारों साल से ऐसी ही है और शायद आगे भी ऐसी ही बनी रहेगी। बदलाव ही किसी समाज में उसके रहन-सहन को नया प्राण, नया रूप देता है। शहर का बाकी हिस्सा इस बदलाव का साक्षी है — “एक तरफ ऊँचे-ऊँचे मकान, विशाल पानी की टंकियाँ, चौड़े रास्ते और सारी शहरी सुविधाएँ।” यह मुख्य शहर की तस्वीर है, जहाँ मध्य वर्ग और प्रभावशाली तबका निवास करता है। इस हिस्से में तरक्की के सभी निशान मौजूद हैं। इसके विपरीत दलित समाज की बस्ती का चित्र कुछ इस प्रकार है — “बस्ती के आस-पास कुछ सुअर चर रहे थे, दो-तीन कुत्ते भौं-भौंककर हलकान हुए जा रहे थे। बस्ती के पास में एक टूटा चापाकल गड़ा था। एक औरत दूर से सिर पर घड़ा लिए आती दिख रही थी।” मंगतूराम को अपनी बस्ती की दुनिया अकारण ही बदरंग तस्वीर नहीं लगती है। यह दुनिया इतनी ठहरी हुई क्यों है? इसमें सदियों का पुराना रूप क्यों झाँकता है? इस बस्ती में जीवन का संगीत सुनाई क्यों नहीं देता है? इन बातों को ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

आधुनिक भारत में शहरों का विकास विपणन स्थल और कल-कारखानों द्वारा वृहद उत्पादन केन्द्रों के रूप में हुआ जो उत्पादन वितरण और उपभोग के चक्र द्वारा मुनाफा कमाने की दिशा में काम करता है। इस काम में वह एक नई संस्कृति — ‘स्वतंत्रता की संस्कृति’ को जन्म देता है — सामंती ढाँचे के पितृतुल्य संरक्षण के आवरण में व्यक्ति के बंधन खोलकर उसे आजाद करता है। यह आजादी काम करने, अपना श्रम बेचने से लेकर अपना भविष्य बनाने तक की होती है। यह ऐसे स्वतंत्र बाजार का आधार बनाता है, जो व्यक्ति को धर्म-जाति, लिंग से परे क्रेता-विक्रेता के रूप देखता है। अपने इस आधार पर भारत जैसे सामंती समाज में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकता था, लेकिन निभा नहीं पाया। जाति प्रथा ने उसकी परिवर्तनकारी भूमिका पर ग्रहण लगा दिया।

भारत में कई आक्रमण हुए, युग बीते, तकनीक बदली लेकिन जाति प्रथा अक्षुण्ण बनी रही और इसने गाँवों का स्वायत्त ढाँचा बरकरार रखा। कार्ल मार्क्स जिसे एशियाई उत्पादन की प्रणाली का नाम देते हैं। इसमें जातियों और इनके श्रम विभाजन के द्वारा गाँव की ज़रूरत का समूचा उत्पादन पूरा हो जाता है।

‘कोरू नृप होऊँ हमें का हानि’

राजा शासन अथवा तंत्र कोई भी रहा गाँव और इसकी जाति प्रथा बेरोक-टोक बनी रही जिसे हिन्दू समाज की निरंतरता कहा जाता है, वह वास्तव में जातियों की जड़ता थी। ब्रिटिश आगमन के साथ पूँजीवाद और औद्योगिक सभ्यता आई ब्राह्मण और अन्य सक्षम जातियों ने इसका लाभ उठाया। लेकिन दलित जातियाँ इसके फायदों से वंचित रहीं। ‘वैतरणी’ कहानी में दलित समाज शहर में ज़रूर है लेकिन उसके ऊपर बंधन अभी भी गाँव के हैं, जाति प्रथा के हैं। यही वजह है कि मंगतूराम मुर्दे जलाने का काम करता है, अपनी इच्छा-अनिच्छा से नहीं, बल्कि पेशे की परंपरा से। शहर में पेशे और व्यवसाय की विविधता होती है लेकिन इस विविधता का फायदा शवदाह करने वाला डोम समाज शिक्षा,

ज्ञान अथवा धन के अभाव में लेने से भी वंचित रह जाता है। मंगतूराम को "युगों से जैसे एक ही रूप में ठहरा आस-पास उसे कचोटता है" उनके मन में कचोट उभरती है, जब बस्ती की तुलना में बाकी शहर को जगमग देखता है।

मुख्य शहर और इसके बाशिंदे डोम बस्ती को हिकारत की नज़र से देखते हैं। यह समाज अंतिम संस्कार की व्यवस्था का काम करता है, मेहनत की कमाई खाता है। इसके बावजूद मुख्यधारा के लोगों की उपेक्षा से अलग-थलग है। डॉ. आंबेडकर का प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से कई मुद्दों पर मतभेद था। नेहरूजी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर दक्षिण अफ्रीका में नस्लभेद और नस्लीय अलगाव का मुद्दा उठाने में लगे थे जबकि आंबेडकर का कहना था कि भारतीयों में जातीय भेद और जातीय अलगाव कहीं अधिक गंभीर समस्या है। अंतर्राष्ट्रीय से पहले राष्ट्रीय और बाहर से पहले घर की समस्या सुलझाना पहली प्राथमिकता होती है। 'वैतरणी' कहानी की डोम बस्ती इस अलगाव का मानो ठोस उदाहरण है। इसी अलगाव के कारण इस बस्ती के विकास की शासन सत्ता द्वारा पूर्ण उपेक्षा की गई; जिसका परिणाम यह हुआ कि बस्ती की हालत कुछ यूँ है – "जेठ की धूप में श्मशान भूमि आँवे सी तप रही थी। कभी-कभी तेज़ हवा के झोंके में उड़ती धूल और इने-गिने पेड़ों का डोलना वातावरण को और भी एकाकी और सूना बना जाते।" इस दयनीय दशा को बाकी लोगों ने अपनी आदत में शुमार कर लिया है, लेकिन मंगतूराम ने नहीं। वह विषमता को देखता है। उसका गहरा यथार्थ बोध उसे बारबार अपनी बस्ती की दशा पर सोचने को बाध्य करता है। विषमता का बोध उसे कर्म की ओर बढ़ाता है। अपने समाज के कठोर जीवन के बीच उसके मन में कोमल कल्पना उभरती है, चापाकल की चाहत जगती है। खलील जिब्रान ने कामना के बारे में कभी कहा था – "आदमी की हकीकत और कल्पना के बीच एक फासला होता है और जो चीज़ इस फासले को भरती है, उसी का नाम कामना है।" डोम समाज भी अपने लिए सुविधाजनक पेयजल की कल्पना करता है, जबकि हकीकत यही है कि पेयजल के लिए उनकी बस्ती में गंदे तालाब और कीचड़ भरे कुएँ के अलावा कुछ भी नहीं है। औरतों को दूर-दूर से पानी भरकर लाना पड़ता है। हकीकत और कल्पना के बीच इस फासले को पाटने के लिए उनके मन में चापाकल की कामना जन्म लेती है। कई बार कामना आदमी में विपरीत दशाओं में जिंदा बने रहने का, आगे बढ़ने और कुछ करने का हौसला देती है। कवि पाश ने यूँ ही नहीं कहा है:

"बहुत खतरनाक होता है सपनों का मर जाना

..... न होना तड़प का –

और सब कुछ यूँ ही –

चुपचाप सह जाना"

चापाकल की कामना मंगतूराम को इसके लिए कोशिश करने का हौसला देती है। बात चापाकल की नहीं है, बल्कि महत्वपूर्ण बात अपनी जीवन दशाओं में सुधार की कामना करने की है।

प्रकृति ने मनुष्य को हवा, पानी जैसे नैसर्गिक उपहार दिए हैं। इनके उपभोग से मनुष्य गरिमा के साथ अपना जीवनयापन करता है। प्रकृति के वरदान के समान उपभोग का हर मनुष्य को अधिकार है। संयुक्त राष्ट्र ने अपने मानवाधिकार घोषणपत्र (1948) में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया – "सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से समान हैं।" लेकिन यह विडम्बना ही है कि 'वैतरणी' कहानी में इस मानवाधिकार को

माँगना पड़ता है। कहानी में मुख्य पात्र का नाम मंगतूराम रखकर लेखिका ने इसी विडम्बना को दर्शाने का प्रयास किया है।

मंगतूराम के मन में चापाकल की कामना है। इसी प्रसंग में 'गोदान' में होरी के मन में गाय की तीव्र कामना का याद आ जाना स्वाभाविक है। गाय के लिए 'होरी' जीवनभर संघर्ष करता है। उसका संघर्ष सामंती ढाँचे के भीतर किसान का संघर्ष है। जबकि 'वैतरणी' में मंगतूराम की कामना और संघर्ष लोकतांत्रिक देश में बुनियादी आवश्यकता पूर्ति से जुड़ी है। होरी के लिए गाय पहले मरजाद और बाद में आवश्यकता है, जबकि मंगतूराम के यहाँ चापाकल पूरी बस्ती के लिए पहली बुनियादी ज़रूरत।

'गोदान' में होरी का दर्द है जीते जी उसे गाय का सुख नसीब न हो पाया; मरने के बाद भी गाय उसका पीछा नहीं छोड़ती है। पण्डित अंतिम संस्कार करवाते हुए आत्मा की शांति के लिए गोदान की माँग करता है। धर्म के ठेकेदारों द्वारा फैलाए अंधविश्वासों के द्वारा गरीब, अनपढ़ लोगों से हरसंभव पैसा लूटने की एक युक्ति यह भी है; पंडित कहता है कि होरी की आत्मा को वैतरणी से पार लगाने के लिए गोदान तो कराना ही होगा। अंतिम समय धनिया की कमाई भी वह झटक लेने में कामयाब हो जाता है।

धर्म और ब्राह्मणवाद का रचा हुआ झूठ कि धरती पर जिस व्यक्ति ने ब्राह्मण को गौ का दान किया है, उसी व्यक्ति को वैतरणी नदी के किनारे गाय उपलब्ध होती है जो उसे स्वर्ग भेजने में सहायक होती है। भय के कारण धर्म में विश्वास करने वाला वर्ग हमेशा इसी प्रभाव में वह सब कुछ करता है जो ब्राह्मण कहता है। 'वैतरणी' कहानी में भी लेखिका ने इसी मिथक का रचनात्मक प्रयोग किया है। कहानी में डोम समाज की चिंता वैतरणी पार करने के बजाय बस्ती में चापाकल लगवाने की है; परलोक में अपना उद्धार करने के बजाय इस लोक में अपना जीवन सुधारने की है। वे इसके लिए निरंतर प्रयास करते हैं — "सरकारी कागज में डोम-चमारों की दुनिया कितनी सुधर गई थी, लेकिन आज भी कोई उनकी बस्ती के लोगों को अपने आसपास फटकने देना नहीं चाहता था। उनके कुएँ, तालाब या नल के पास जाते ही पीढ़ियों की प्रतिहिंसा सर्द से आँखों से लपलपा उठती। इस श्मशानघाट की मरम्मत के लिए वे सब अर्जियाँ दे-देकर थक चुके थे, एक-एक बूँद के लिए तरसते-बिलखते रहे थे, लेकिन किसी ने ध्यान देना ज़रूरी नहीं समझा था।" ब्राह्मण दूसरों का परलोक सुधारता है, लेकिन हकीकत में डोम समाज का तो यह 'लोक' ही बर्बाद हुआ पड़ा है। जिस शहर की वे सेवा करते हैं उस शहर ने ही उन्हें नहीं अपनाया है। एक इन्सान की तरह बसाया नहीं है। इस बस्ती की पीड़ा कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि की इस कविता की तरह है —

"फसल ठाकुर की

पानी ठाकुर का

खेत-खलिहान ठाकुर के

गली-मुहल्ला ठाकुर का

फिर अपना क्या?

गाँव?

शहर?

देश?"

राजनीति के बारे में बाबा साहेब आंबेडकर ने कभी कहा था – “राजनीति के दो उद्देश्य होते हैं – शासन और संस्कृति का प्रसार” इसमें एक से शांति-व्यवस्था रहती है तो दूसरे से समाज में सुधार द्वारा सभी को उन्नति का अवसर मिलता है। ‘वैतरणी’ कहानी में डोम समाज अपनी जीवन दशाओं से निराश है। वह इसमें सुधार चाहता है। यह सुधार किसी हिंसा से नहीं बल्कि राजनीतिक उपायों से हासिल करने का प्रयास करता है। वह अपनी ज़रूरत के लिए अपने प्रतिनिधि से प्रार्थना करता है। क्या प्रार्थना को राजनैतिक चेतना का आद्य रूप कहा जा सकता है? अगर आप कांग्रेस पार्टी का आरंभिक इतिहास देखें तो उनके नेताओं का अधिकांश समय अंग्रेजों के सामने अपनी माँगों के लिए प्रार्थना पत्र देने में गुजरा है। प्रार्थना राजनैतिक चेतना नहीं है लेकिन इस चेतना का प्रस्थान बिन्दु अवश्य है। ‘वैतरणी’ कहानी में चापाकल की माँग भी एक प्रस्थान बिन्दु है, दलित समाज की राजनीतिक चेतना की पूर्व पीठिका है।

आज मध्यवर्ग के बीच राजनीति एक बदनाम पेशे की तरह है। समाज में सभी कमियों का ठीकरा राजनीति के ऊपर ही फोड़ा जाता है। क्या राजनीति समाज के सभी दोष की वजह है? गौर करें तो पाएँगे कि सदियों से विषमतापरक इस समाज में राजनीति ने समानता का कम-से-कम एक आधार तो दिया – एक व्यक्ति, एक वोट। चाहे राज भवन में रहने वाला राज्यपाल हो अथवा झुग्गी में रहने वाला मंगतू, दोनों के वोट का मूल्य समान है। वैतरणी कहानी में नेता काशीनाथ और उनका समाज दलित समाज को पसंद नहीं करता, लेकिन बर्दाश्त कर लेता है, क्योंकि मतदाता के रूप में उनके महत्व को वे इनकार नहीं कर सकते हैं।

दूसरा राजनीति के द्वारा ही ‘वैतरणी’ में दलित समाज अपनी समस्याओं को सुलझाना चाहता है। पेयजल के लिए हैण्डपम्प लगवाना चाहता है। वैसे तो यह काम प्रशासन द्वारा नियमानुसार कर दिया जाना चाहिए लेकिन शासन-प्रशासन में दलित अधिकारियों की उपस्थिति नगण्य है। गैर-दलित अधिकारी, दलित बस्तियों के उद्धार को बेमतलब का काम समझता है। इसलिए प्रशासन दलित बस्तियों की उपेक्षा करता है। दूसरा, आर्थिक रूप से दलित बस्ती के लोग अगर समर्थ होते तो वे पेयजल जैसी सुविधाओं के लिए स्वयं ही चापाकल की व्यवस्था कर सकते हैं। लेकिन पेशागत बंधन के कारण शवदाह के काम में इतनी आमदनी नहीं होती कि वे आर्थिक रूप से समर्थ हो सकें। यह असमर्थता ही उन्हें माँगने को मजबूर करती है। तीसरा वे अपनी ज़रूरतों के लिए माँगने के बजाय छीन सकते हैं, बगावत कर सकते हैं; लेकिन इसके लिए न्यूनतम रूप से चेतना और संगठन अनिवार्य होता है। अपनी जिन्दगी बचाने में ही जब उनकी पूरी ऊर्जा, उनका पूरा ध्यान लगा हुआ हो, तो कैसी चेतना, कैसा संगठन और कहाँ की बगावत?

इस प्रकार आर्थिक, प्रशासनिक और विद्रोह के तीनों रास्ते ‘वैतरणी’ की दलित बस्ती के लोगों के लिए लगभग बंद है। तब वे अपनी माँग लेकर राजनीति के रास्ते पर चलते हैं। दलित तथा अन्य वंचित जातियों में लोकतंत्र की राजनीति को शिद्दत के साथ अपनाया। ‘इकानामिक एण्ड पालिटिकल विकली’ में एक प्रश्न उठाया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लोकतंत्र तो दक्षिण और दक्षिण पूर्वी एशिया के अनेक देशों में पनपा लेकिन जल्दी ही उसे तानाशाही अथवा धार्मिक कठमुल्लों ने उखाड़ फेंका, लेकिन भारत में यह क्यों कायम रह गया? इसका उत्तर हमें कहानी की दलित बस्ती ही दे देती है जैसा ऊपर बताया गया है कि मुक्तिकामी भूमिका के कारण भारत में निम्न जातियों ने लोकतंत्र की राजनीति को अपने मनःमस्तिष्क में बसा लिया। वे सैकड़ों कोस दूरी तय करके अपने नेताओं की रैलियों में जाते, मतदान करते और चुनाव को उत्सव बना देते

हैं, लोकतंत्र का उत्सव। इस सक्रिय भागीदारी के कारण ही आपातकाल भी टिक नहीं पाया और उसे चुनाव-लोकतंत्र को रास्ता देना पड़ा। जबकि पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल आदि में राजनीति में भागीदारी प्रायः मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की रही। पाकिस्तान में प्रायः सभी बड़े नेता सामंती घरानों से जुड़े थे। भारत में जातियों द्वारा आम जनता राजनीति में सक्रिय रही, लेकिन पड़ोसी देशों में आम जनता उदासीन रही। ऐसी उदासीनता के कारण लोकतंत्र उत्सव नहीं चुनाव का तमाशा बन कर रह जाता है। कोई ऐसे लोकतंत्र को उखाड़ फेंके तो इसमें आश्चर्य क्या? लेकिन भारत में जाति और राजनीति के जटिल रिश्ते ने लोकतंत्र की जड़ों को इतना मजबूत किया कि इसे उखाड़ना किसी के बूते के बाहर था।

अब सवाल यह उठता है कि यदि निम्न कही गई जातियों ने लोकतंत्र में ऐसा योगदान दिया तो लोकतंत्र ने उनको क्या दिया? ऐसा ही सवाल मंगतूराम के मन में उठा होगा, जब वह अपने लोगों के साथ क्षेत्र के विधायक के पास जाता है – “साहेब अब इस बस्ती में नहीं रहा जाता। पानी लाने के लिए सबको दूर-दूर जाना पड़ता है। चापाकल भी टूटा पड़ा है, कहीं कोई सुनवाई नहीं, सरकारी दफ्तर में अर्जी देते-देते गोड़ू टूट गए।” ऐसे तो लगता है कि लोकतंत्र की पालकी में कोई और सवार है, दलित जातियाँ तो उसको बस ढो रही हैं। सदियों की सामाजिक व्यवस्था का बोझ क्या लोकतंत्र में भी खत्म नहीं होगा? कवि कुँवर नारायण के शब्दों में कहें तो –

“काँधे धरी यह पालकी

है किस कन्हैयालाल की

इस गाँव से उस गाँव तक

नंगे बदन फेंटा कसे

बारात किसकी ढो रहे

किसकी कहारी में फँसे?”

इस सवाल का जवाब इतिहास में देखा जा सकता है। आजादी मिलने के बाद सत्ता अभिजन के हाथ में आई। दलितों के नायक बाबा साहेब आंबेडकर चुनावी गणित में इनसे जीत नहीं पाए। लेकिन उनकी कोशिशों ने लोकतंत्र की राजनीति में दलित चेतना के बीच देश भर में फैला दिए। कांग्रेस में बिखराव के बाद दलित और अन्य क्षेत्रीय राजनीति का उभार हुआ। “वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा” के नारे के साथ दलित समाज राजनीति के रंगमंच पर मुख्य भूमिका में उभरा। ‘वैतरणी’ कहानी में राजनीतिक दशा इससे पूर्व की अवस्था की है। इसमें विधायक की सामाजिक पहचान का उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन उसके व्यवहार, प्रतिमान और मूल्यों से संकेत मिलता है कि विधायक काशीनाथ गैर-दलित और गैर-ब्राह्मण है। संभवतः मध्यवर्ती जाति का है। वह किसी प्रकार की सामाजिक प्रतिबद्धता नहीं दर्शाता और न ही जनबल, जनहित की अधिक परवाह करता है। ब्राह्मणवादी संस्कारों का पालन करते हुए वह लोकतंत्र का नहीं बल्कि सामंती सभ्यता का प्रतिनिधि अधिक लगता है, जनबल से अधिक भरोसा शायद उसे बाहुबल पर है। अन्यथा वह एक पूरी बस्ती की बुनियादी आवश्यकता को नज़रअंदाज करते हुए चापाकल के लिए एक ब्राह्मण की कर्मकाण्डीय आवश्यकता को तरजीह नहीं देता, लोक को छोड़कर परलोक की चिंता नहीं करता। यहाँ दोष राजनीति का नहीं राजनीति में पल रहे गलत प्रतिनिधि के गलत चुनाव का है। बाबा साहेब आंबेडकर ने ऐसे खतरे के बारे में पहले से आगाह किया था – “यदि हमारे सही प्रतिनिधि विधानसभा और

संसद के लिए नहीं चुने गए तो हम लोग अपनी आजादी का सही ढंग से उपयोग नहीं कर पाएँगे हमारे सही प्रतिनिधि संसद और विधानसभा में होंगे तो उसी से अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलेगी, सिर्फ उसी से हमारी गरीबी दूर होगी। और सिर्फ उसी से हम लोगों को जीवन में बराबरी का हक मिल सकता है।” डॉ. आंबेडकर आधुनिक जीवन में राजनीति को ‘मास्टर की’ मानते थे। इसी से सभी समस्याओं के समाधान का रास्ता निकल सकता है।

कहने का आशय है कि लोकतंत्र में ही नहीं सत्ता में भी दलित समाज की भागीदारी जरूरी है। डॉ. आंबेडकर ने गुणभेद और जातिभेद का गहन विश्लेषण किया, जिनके अनुसार लोकतंत्र का आधार वाक्य है – “सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से समान हैं। उन्हें प्रकृति द्वारा विवेक और अंतश्चेतना प्रदान की गई।” इसी के आधार पर संविधान में कानून के सम्मुख सभी व्यक्तियों को बराबर माना गया है।” लेकिन यह बात हमारे देश में व्यवहार में लागू नहीं हो पाती। कानून समानता की बात अक्सर सामाजिक स्तर पर दम तोड़ती है। वहीं कानून के समक्ष भी समानता को हम अक्सर दम तोड़ते हुए देखते हैं जब बड़े अपराधी कानून के संरक्षण में घूमते हैं। व्यवहार में जाति और गुणभेद के कारण कानूनी असमानता बरकरार है। समान कह देने भर में समानता नहीं आ जाती, खासकर तब जब परिस्थितियों में भारी असमानता हो। जातीय भेदभाव के कारण गुणों में बहुत अंतर आ जाता है। ‘वैतरणी’ कहानी में दलित बस्ती जातीय अलगाव के कारण गुणों के स्तर पर बहुत पीछे छूट गई है – “वह इसी तरह अभावग्रस्त टूटी-फूटी बस्ती में चरते सुअरों के बीच मुर्दे जलाते हुए उड़ती धूल और श्मशान के वीराने में रहता है, रहता रहेगा। दुनिया कहाँ-से-कहाँ निकल जाएगी, लेकिन उसकी दुनिया फ्रेम में जड़ी एक बदरंग तस्वीर की तरह इसी प्रकार जड़ और ठहरी हुई रहेगी।”

इसलिए राजनीतिक दशा में समानता और दलित समाज के उत्थान के लिए दलित चिंतकों ने शिक्षा और ज्ञान के महत्व पर जोर दिया है, ताकि जातिभेद के साथ गुणों के भेद को समाप्त किया जा सके। तभी किसी मंगतूराम को अपना बुनियादी अधिकार किसी काशीनाथ से माँगना नहीं पड़ेगा। दलित समाज एक चापाकल की ही नहीं बल्कि गरिमामय जीवन की माँग करेगा, ताकि उसके दुनिया की तस्वीर बदरंग नहीं सतरंगी हो।

दलित समाज के इस बदरंग-बदहाली की जिम्मेदार शासन-व्यवस्था में नेताओं ने ही पहली भूमिका निभाई। वर्ना विधायक इस अभावग्रस्त बस्ती में चापाकल तो क्या कई अन्य सहूलियतें मुहैया करा सकते थे। इसे ही लक्ष्य कर मंगतूराम के मुँह से व्यंग्यपरक वाक्य को सिफारिशी लहजे का जामा ओढ़ाकर लेखिका कहलवाती हैं – “नेताजी, आप चाह देंगे तो चापाकल मुर्दाघाट में तो क्या नरक में भी लग जाएगा, खाली कृपा दृष्टि होनी चाहिए।” आजादी के इतने वर्षों बाद भी दलित समाज की बदहाली का मूल कारण नेताओं की यही उदासीनता है। सुविधाएँ मुहैया कराने के पीछे उनके यही ‘चाह देने’ और ‘न चाहने’ के पीछे की राजनीति को भी समझना होगा।

13-5 [^]o|r j.kh[^] e nfyr fgr vkj /kkfed iji jk dk Vdjko

‘वैतरणी’ का मिथकीय आशय मोक्ष अथवा मुक्ति से है यानी कर्मफल से, जरा-मरण से मुक्ति। लेकिन कहानीकार नीरा परमार की कहानी ‘वैतरणी’ में आध्यात्मिक मुक्ति नहीं वरन् शोषण से मुक्ति की कामना है। यह मुक्ति उस धार्मिक परंपरा से भी है, जो शोषण और भेदभाव को धार्मिक कर्तव्य के रूप में मानती है। वास्तव में हिन्दू धर्म तात्त्विक रूप

से अपराजेय धर्म है। यह 'सर्वाभूति एक आत्मा' का महान आदर्श रखता है, अर्थात् 'सभी प्राणियों में एक आत्मा', लेकिन व्यवहार में यह इसके विपरीत जाति प्रथा का आचरण करता है। व्यवहार में कुछ जातियों को देवता तो कई जातियों के लिए पशुवत् और उससे भी बदतर आचरण का विधान किया गया। अन्य धर्मों के अनुसार ईश्वर ने इन्सान को बनाया, जबकि हिन्दू धर्म के अनुसार ब्रह्मा के शरीर से इन्सान नहीं जातियों की उत्पत्ति हुई। तब ऐसे धर्म में भेदभाव स्वाभाविक धार्मिक कर्तव्य का दर्जा हासिल कर लेता है। कहानी में डोम समाज इसी धार्मिक भेदभाव और उसके द्वारा मान्य सामाजिक भेदभाव का शिकार बनता है। इस बस्ती को एक चापाकल की आवश्यकता है। इसकी ज़रूरत पूरी बस्ती और डोम समाज को है, उन्हें अपना जीवन बचाए रखने के लिए। उनकी यह आवश्यकता अपने स्वरूप में सार्वजनिक है। वहीं ब्राह्मण को भी चापाकल की आवश्यकता है लेकिन जीवन बचाने के लिए नहीं बल्कि छूत-अछूत की अपनी धार्मिक पवित्रता बचाने के लिए।

इस आवश्यकता को पूरा करने की क्षमता इलाके के प्रभावशाली नेता काशीनाम के पास है। लेखिका ने उनकी जाति या धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख नहीं किया है लेकिन वह अपने जीवन में ब्राह्मणवादी मान्यताओं के अनुसार जीता हुआ दिखाया गया है। कहानी के आरंभ में उसके मृत भाई का अंतिम संस्कार होता है। वह गोदान, ब्रह्मभोज, जैसे सनातन संस्कारों का पूरी निष्ठा से पालन करता है। यह बहुत उपहास भरा है कि समाज में कितने लोगों को कायदे की जिन्दगी भी मयस्सर नहीं, लेकिन इन जिन्दा लोगों के बजाए मर चुके लोगों की भलाई की चिंता की जा रही है। अर्थात्, जो मिट गया है उसका भविष्य बनाने के लिए गोदान हो रहा है, वैतरणी पार कराई जा रही है, लेकिन आसपास में जो जिन्दा लोग हैं उनकी अनदेखी की जा रही है। सहज बोध को खटकने वाली यह बात भी धार्मिक मान्यता के द्वारा पुष्ट होकर समाज में प्रचलित हो जाती है। समूचा दलित साहित्य ऐसी धार्मिक परंपरा को नकारता है। वह इसके स्थान पर सहज विवेक की स्थापना करता है। कबीरदास जब कहते हैं –

“पंडित वाद बदन्तो झूठा

राम कह्या दुनिया गति पावै,

खांड कह्या मुँह मीठा”

अगर राम कहने भर से मुक्ति मिल जाती है तो मिश्री कह देने से मुँह मीठा भी हो जाना चाहिए। इसी विवेक की स्थापना 'वैतरणी' कहानी के माध्यम से की गई है। लेकिन इसकी तर्क का ढर्रा लोकतंत्र की प्रेरणा पर है, धर्म की नहीं।

एक ओर डोम समाज का हित है तो दूसरी ओर उस परंपरा का हित है, जिसने विधायक काशीनाम के भाई की अंत्येष्टी करवाई है और परंपरा की माँग को पूरा करना इस अंत्येष्टी संस्कार का हिस्सा है। एक सार्वजनिक हित है दूसरा निजी हित एक के लिए वह बुनियादी आवश्यकता है, दूसरे के लिए अतिरिक्त आवश्यकता है। लोकतंत्र का पक्ष यह होगा कि डोम समाज की बुनियादी आवश्यकता और इसके सार्वजनिक रूप को देखते हुए सार्वजनिक धन का चापाकल इस बस्ती में लगना चाहिए। वहीं हिन्दू धार्मिक मान्यता का पक्ष यह होगा कि ब्राह्मण को शुद्धता तथा पवित्रता को बनाए रखने का अधिकार है। उसके इसी विशेषाधिकारों के मद्देनज़र चापाकल ब्राह्मण के आँगन में लगवाने की सिफारिश विधायक की पत्नी करती है। कहानी का अंत संकेत देता है कि यही हुआ भी।

यह धर्म की जीत और लोकतंत्र की हार है। जिस देश में लाखों लीटर दूध, जो भूखे बच्चों के काम आ सकता था, पत्थर की मूर्तियों पर चढ़ाया जाता हो, वहाँ लोकतंत्र के विवेक और समझदारी की जीत एक कल्पना हो सकती है — वास्तविकता नहीं। इसी तथ्य को प्रकारान्तर से दर्शाकर कहानी अपना अंत सार्थक बनाती है।

समाज अपने सदस्यों की भलाई के लिए अपने संसाधनों के इस्तेमाल के लिए निर्णय लेता है। उदाहरण के लिए, उपलब्ध दूध पर पहला अधिकार गर्भवती महिला और दूसरा अधिकार बच्चों का होना चाहिए क्योंकि उसकी आवश्यकता उन्हें ही सर्वाधिक है। लेकिन जब इस दूध से मंदिर की मूर्तियों को क्षीर-दुग्ध स्नान करवाया जाता है और लोग इसे हर्ष और श्रद्धा के साथ जय-जयकार करते हैं तो तार्किक रूप से यह विवेकपूर्ण नहीं होगा। लेकिन इस विवेक विरोधी कर्मकाण्ड को धार्मिक मान्यता द्वारा आश्रय मिलता है। धर्म की तमाम भूमिकाओं में एक भूमिका लोगों के विवेक और सामान्य समझदारी पर पर्दा डालने की भी होती है।

कहानी में ब्राह्मण, राजनेता काशीनाम के विवेक पर पर्दा डाल देता है। वह कहता है — “एक चापाकल हमारे आँगन में लग जाता। पण्डिताईन को जात-कुजात के बीच पानी भरने जाना पड़ता है।”

जात-कुजात के बीच भेद करना ब्राह्मण का सदियों से चला आ रहा धार्मिक कर्तव्य है और अपनी पवित्रता को बनाए रखना वह अपना धार्मिक अधिकार मानता है। इस अधिकार के लिए वह तमाम प्रकार के कर्मकाण्डों का सहारा लेता है। ये कर्मकाण्ड अस्थिरता, विप्लव, मृत्यु तथा अनवांछित दशाओं में व्यक्ति को शान्ति और स्थिरता प्रदान करते हैं। जैसा कि कहानी में दर्शाया गया है ‘श्राद्ध में उन्होंने काफी खर्च किया था। बड़े भाई के पीछे गो-दान, सोना-दान, ब्रह्म-भोज, सब संबंधी परिजनों को खिलाने वगैरह में कोई कमी नहीं रखी थी उन्होंने। अवसाद अब धीरे-धीरे कम हो रहा था।’ यह कर्मकाण्डों की सकारात्मक भूमिका यहीं पर आकर दम तोड़ देती है। इसके बाद उसकी विध्वंसक भूमिका शुरू हो जाती है। यह पवित्र और अपवित्र में भेद को विधान करने लगती है, जो आगे चलकर जातियों के छूत-अछूत विधान में बदल जाता है। कालांतर में यह भेदभाव सामाजिक जीवन में असमानता की वजह बन जाता है। वैतरणी कहानी में मंगतूराम को यह असमानता बार-बार खटकती है। जब बाहर की दुनिया की तुलना में अपनी बस्ती उसे बदरंग तस्वीर की तरह लगती है — “एक तरफ ऊँचे-ऊँचे मकान, विशाल पानी की टंकियाँ, चौड़े रास्ते और सारी शहरी सुविधाएँ वह इसी तरह अभावग्रस्त टूटी-फूटी भिनकती बस्ती में, चरते सुअरों के बीच, मुर्दे जलाते हुए, उड़ती धूल और श्मशान के वीराने में रहता रहा है, रहता रहेगा। दुनिया कहाँ-से-कहाँ निकल जाएगी, लेकिन उसकी दुनिया फ्रेम में जड़ी एक बदरंग तस्वीर की तरह इसी प्रकार जड़ और ठहरी हुई रहेगी।”

यह असमानता प्रकृति नहीं बल्कि व्यवस्था और ब्राह्मणवादी परंपरा की देन है। कर्मकाण्ड, बलि, दाह, यज्ञ-हवन, स्वर्ग-नरक, मोक्ष-दान आदि जैसी ब्राह्मणों द्वारा दी गई परंपरा ने भारतीय समाज की समझ पर कब्जा जमा लिया।

इसी मंगतूराम ने बौद्ध धर्म के अहिंसा और करुणा संबंधी विचारों को विकृत किया। वैष्णवों ने तो अहिंसा को इतना हास्यास्पद बना दिया कि वह व्यवहार योग्य भी नहीं रही। करुणा के बीज भाव को सनातन धर्म ने पशु-पक्षियों तक सीमित कर दिया। आज के समय में ऐसे भक्त भी हैं जो सुबह चींटियों के बिल के पास आटा डालना नहीं भूलते, इस बात से बेखबर रहते हुए कि दुनिया के लगभग तीन-चौथाई भूखे लोग भारत में रहते हैं। करुणा एक उदात्त भाव जो किसी को मुकम्मल इंसान का दर्जा देता है। लेकिन धर्म के पाखण्ड ने डोम समाज को इस भावना के काबिल नहीं समझा।

बस्ती का दलित समाज सभी जातियों के श्राद्ध-कर्म को तत्परता से करता है। दूसरी ओर ब्राह्मण भी श्राद्ध कर्म के कर्मकाण्ड सम्पन्न करता है। लेकिन, एक ही कर्म से जुड़ने के बावजूद एक सामाजिक सोपान में सबसे ऊपर है, तो दूसरा सबसे नीचे यही वर्ग और वर्ण का भेद है। जैसा बाबा साहेब आंबेडकर ने कहा था – “वर्ग व्यवस्था अगर श्रम विभाजन है तो वर्ण व्यवस्था श्रमिकों का विभाजन है।” वर्ग का आधार आर्थिक है तो वर्ण का आधार धार्मिक है। कार्ल मार्क्स ने कभी धर्म की तुलना अफीम से की थी। अफीम व्यक्ति को वास्तविकता से दूर कर देती है। सनातन धर्म उच्च धरातल पर सभी आत्माओं की समानता की बात करता है – एकात्म मानववाद की बात करता है। लेकिन दलित समाज को अध्यात्म में नहीं, व्यवहार में, जीवन में समानता की आवश्यकता है। वह बुनियादी सुविधाएँ, समान शिक्षा व ज्ञान चाहता है। ऐसे में धर्म उसके खिलाफ है, सनातन धर्म अवर्ण जाति की बदहाली को पूर्व कर्मों का फल मानता है। अब पूर्व कर्मों का फल है, नियति का विधान है तो मानवीय प्रयास और सामाजिक न्याय द्वारा उत्थान के लिए गुंजाइश भी कहाँ बन सकती है – ऐसी सोच ‘सनातनी सोच’ कहलाएगी। मानवतावाद इसके ठीक विपरीत सबके लिए बराबरी की माँग लेकर उठेगी। दलित चिंतक कंपल भारती दलित संवेदना और उनकी नई चेतना, नए बोध को कुछ इस प्रकार उजागर करते हैं – “मेरे परदादा मर गए जूठन खाते उतरे चिथड़े पहनते/खेत बोते-जोतते/इसे पूर्व जन्मों का फल मानते-मानते/ और जमींदार फूलता गया/फलता गया/जमींदार का वंश बढ़ता गया। आकाश बेल की तरह इनका खून चूसते-चूसते/धर्म का भय दिखाकर नीच कर्मों का फल बताकर/पर अब मैं पूर्व जन्म नहीं वर्तमान देखता हूँ।

डॉ. आंबेडकर ने सनातन धर्म की इसलिए आलोचना की। इस धर्म में दलितों को अस्पृश्यता और बदहाली के सिवाय कुछ नहीं मिला है। दलितों को ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो उनको मानवीय गरिमा तथा समानता का दर्जा उपलब्ध कराए। उन्होंने जोर देकर कहा – “हिन्दू धर्म में जन्म लेना या न लेना मेरे वश में नहीं था, लेकिन मैं हिन्दू रहकर मरना नहीं चाहूँगा।”

मंगतूराम और डोम समाज अपनी बदहाली को नियति का विधान मानने से इंकार करता है। इसे पता है गैर-बराबरी की दशाएँ प्रकृति ने नहीं बल्कि इन्सानों ने ही बनाई हैं। वे इसे सुधारने की कोशिश करते हैं, विधायक से मिलते हैं। उनका यह मानवीय उद्यम धार्मिक मान्यता के विपरीत उनकी लोकतंत्र में आस्था का परिचायक है। उन्होंने अपनी मुक्ति के लिए धर्म को नहीं लोकतंत्र को चुना। भले ही फौरी तौर पर उनकी समस्या का समाधान लोकतंत्र में नहीं हो पाया, लेकिन इसके उत्तरदायी वे लोग हैं जिनके हाथ में लोकतंत्र का झंडा है।

कहानी का अंत दलित समाज के लिए इस झण्डे को अपने हाथ में लेने की आवश्यकता की ओर इशारा करता है।

13-6 [^]o'rj.kh[^] e i f'kYi vkj Hkk"kkxr fo'k"krk,|

नीरा परमार की कहानी ‘वैतरणी’ में दलित समाज की विडम्बना को दिखाया गया है। कहानी में क्या कहा गया है, इसे अन्तर्वस्तु कहते हैं और किस तरह कहा गया है, इसे शिल्प कहते हैं। दोनों अलग होते हुए भी एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। ‘वैतरणी’ कहानी का आरंभ बिम्बात्मक शैली में हुआ। इसमें लेखिका का उद्देश्य डोम बस्ती की वास्तविकता प्रस्तुत करना था – “अभी दिन के ग्यारह ही बजे थे। जेठ की धूप में श्मशान भूमि आँवे सी तप रही थी। बस्ती के आसपास कुछ सुअर चर रहे थे, दो-तीन कुत्ते भौंक-भौंककर हलकान हुए जा रहे थे।” सभी वाक्य मिलकर एक बिम्ब प्रस्तुत कर रहे

हैं। अलग-अलग चाक्षुष बिम्ब डोम बस्ती को जीवंत रूप से उपस्थित कर रहे हैं। यह दुनिया गरीबी की है, जेहालत की है। इसमें लोग अमानवीय हालत में रह रहे हैं। उनका जीवन पशुओं जैसा ही हो गया है।

लेखिका ने इनमें से कोई भी बात इन पंक्तियों में नहीं कही। इसके बावजूद पाठक उनका आशय समझ जाता है कि बस्ती की क्या दशा है। वहाँ सिर्फ गरीबी और जेहालत है। अगर वह इसे सीधे-सीधे कह देती तो यह अखबारी रिपोर्ट होती, एक अच्छी कहानी अथवा अच्छा साहित्य नहीं। इस बिम्ब में सूअर चर रहा है सूअर कहाँ चरता है? कूड़े के ढेर में, गंदगी में। ये चीजें डोम बस्ती की दुनिया का अंग हैं। कुत्ता आदमी का वफादार, उनकी उपस्थिति को सहन नहीं करता है, भौंक कर अपनी नापसंदगी जाहिर कर रहा है। आभिजात्य समाज की सभ्य दुनिया में तो आदमी अपनी कॉलोनी, अपनी जगह में पशु अपनी जगह पशुशाला में रहता है, लेकिन डोम समाज की बस्ती में सभ्यता के ये तौर-तरीके आपस में गुडमुड हो गए हैं। आदमी, कुत्ता, सुअर सभी इकट्ठे ही हैं, एक दूसरे के साथ, एक-दूसरे को बर्दाश्त करते हुए जी रहे हैं। इस पूरे दृश्य को बिम्ब के माध्यम से लेखिका ने बस्ती के पूरे भूगोल को सामने खोलकर रख दिया है। अकारण नहीं है कि नामवर सिंह कहानी की सार्थकता छोटे मुँह से बड़ी बात करने में मानते हैं। यहाँ भी लेखिका ने कुछ वाक्यों में बहुत कुछ कह दिया है।

अगली पंक्ति में "बस्ती के पास टूटा चापाकल गड़ा था। एक औरत दूर से सिर पर घड़ा लिए आती दिख रही थी।" यह बस्ती शहर का अंग है लेकिन ऐसा अंग जहाँ कुछ भी सही ढंग से काम नहीं कर रहा है। शहर का स्वभाव उसकी गतिशीलता होती है। गाड़ियाँ, मशीनें कार्य-व्यापार और यहाँ तक कि आदमी की चाल में भी तेजी होती है। जरा शहर के आगे गाँव की जिन्दगी कवि केदारनाथ सिंह के शब्दों में देखिए तो वहाँ —

"धीरे-धीरे उड़ती है धूल

धीरे-धीरे चलते हैं लोग

धीरे-धीरे बजते हैं घंटे

शाम धीरे-धीरे होती है।"

लेकिन श्मशान भूमि की बस्ती, शहर में बसने के बावजूद गति से, विकास से वंचित है। शहर की सुविधाएँ और यंत्र भी जड़ हैं, खराब हैं। यंत्र का सहारा नहीं रहा तो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। टूटे चापाकल के आगे घड़ा लेकर आती स्त्री इसी पुरुषार्थ को दर्शाती है।

नीरा परमार ने दलित जीवन शिल्प में सहजता से प्रस्तुत किया है। उनकी कहानी में कमरे में धूप खरगोश की तरह नहीं आती और न ही मूसलाधार बारिश पानी की दीवार बना जाती है। दलित कथा साहित्य का शिल्प ऐसे ऊँचे दर्जे की कल्पना का मोहताज नहीं है, जिसको पढ़कर गुणी पाठक वाह-वाह कर उठे। दलित साहित्य अनुभूति का साहित्य है। इनके अनुभव के दायरे में इतना कुछ उपस्थित है कि उन्हें ऊपर की बानगी में उपस्थित आकाश फोड़ और पातालफोड़ कल्पना की आवश्यकता ही नहीं है। दलित जीवन में प्रायः अभाव की दशाएँ हैं, जो भाव की अहमियत पैदा करती हैं। जो भूख के दर्द से गुजरा हो, खाने के स्वाद को तरसा हो, जो सूखे को सहन कर चुका हो — वह रस एक एहसास को औरों की तुलना में कहीं ज्यादा शिद्दत से महसूस कर सकता है। 'दूसरी परंपरा की खोज' में आलोचक नामवर सिंह सवाल करते हैं कि साहित्य में

वैचारिक उत्कृष्टता और कलात्मक उत्कृष्टता में विलोम का संबंध क्यों है? अथवा यह कह सकते हैं कि भक्ति आंदोलन में निर्गुण संतधारा विचार के स्तर पर जोरदार तथा कलात्मक रूप से कमजोर है; जबकि बाद की सगुण भक्तिधारा विचार के स्तर पर छीजती चली गई और कलात्मक चमत्कार के स्तर पर उत्तरोत्तर मजबूत होती चली गई। इस प्रश्न का उत्तर शायद दलित साहित्य के विश्लेषण से मिल सकता है। अभाव की जीवन दशाओं के कारण दलित समाज भाव सम्पदा के रूप में बहुत सम्पन्न है। 'वैतरणी' कहानी में देखें तो इसमें कितने प्राणी, कितने कार्य-व्यापार हैं। दलित जीवन में सदी, गर्मी, बरसात अपने प्रचण्ड रूप के साथ प्रहार करते हैं, जबकि उच्च वर्ग अपनी तमाम सुविधाओं के साथ इन परेशानियों से महफूज रहता है। जिसने जीवन में चुनौतियों के सभी रूपों – आर्थिक, सामाजिक, वातावरणीय, सभी चुनौतियों का सामना किया हो उसकी भाव सम्पदा का कोष कभी रिक्त हो सकता है? तब उसे अनावश्यक रूप से कल्पना का घोड़ा दौड़ाने की क्या ज़रूरत है? कहानी में धूप के टुकड़े को खरगोश बता देना अगर आचार्यों की नज़र में कलात्मकता है तो दलित सौन्दर्यशास्त्र ऐसी कलात्मकता को शायद ही मान्यता दे। उसकी रचना के शिल्प की पड़ताल के मानक आचार्यों के परंपरागत मानकों से कहीं भिन्न है।

कहानी में बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है, लेकिन यह ज़बान सपाट नहीं सर्जनात्मक है – 'उड़ती धूल और इने-गिने पेड़ों का डोलना वातावरण को और भी एकाकी और सूना बना जाते,' 'मीलों दूर एक गंदले पोखर से पानी लाती,' 'दुनियावी चिन्ताएँ घेर रही थीं,' 'मंगतू को बँगले में घुसने में जितना तनाव झेलना पड़ा था, अब वह बड़ी ही सहजता से गेट बंद कर चापाकल की तेज़ धार के मीठे सपनों के साथ लौट गया' जैसे वाक्य लेखिका की सर्जनात्मक क्षमता से हमारा परिचय कराते हैं। वहीं दूसरी ओर इनकी कहानी में सहज बोलचाल की बानगी कुछ यूँ है – 'टूटा चापाकल गड़ा था,' 'निराश मन में आशा हरियाई,' 'बस्ती के लोग असीस देते,' 'कुछ फटेहाल बच्चे भी जमा हो गए,' 'चापाकल के लिए बिनती की थी,' 'गला घुटकते हुए,' 'जब तकजीते असीसते' आदि। स्थितियों को उजागर करने में इनकी भाषा पूर्णतया सक्षम और सहज है।

इस भाषा में बोलचाल के कई स्तर दिखाई पड़ते हैं। पात्र का जो सामाजिक स्तर है, उसी के अनुसार उसकी भाषा का अंदाज़ है। शास्त्रीय शब्दों में इसे ही पात्रानुकूल भाषा कहते हैं। मसलन, नेताजी मुँह से कम और इशारों से ज्यादा बोलते हैं। सत्ताधारी व्यक्ति को बोलने की आवश्यकता कहाँ पड़ती है, जब तमाम लोग उसके इशारों पर नाचने को तैयार बैठे हों। कम बोलना अपने को कम उजागर करने का एक तरीका भी है। लोग जिसे कम जानते हैं, उससे भय भी खाते हैं। नेताजी इसी भय द्वारा लोगों पर राज करते हैं। चमचा बोलता है तो उसकी बात में खीझ उभरती है। वह अपने वाक्यों में उधार की सत्ता की धौंस जमाता है। उसकी बात में ऐसे अधिकार का गर्व झलकता है, जिस गर्व के वह लायक ही नहीं है। जैसे मंगतूराम और बस्ती के लोग विधायक से पीने के पानी और चापाकल की बात करते हैं तो उसका चमचा कहता है – "यही समय है विधायकजी के माथे पर चढ़ने का? तुमई साले सब, बेला-कुबेला कुछ नहीं देखते हो।"

पात्रों के अनुसार भाषा का अंदाज़ लेखिका के कौशल का सूचक है। उनका सूक्ष्म अवलोकन कहानी में बार-बार दिखता है। कम पढ़े-लिखे आदमी के बात का अंदाज़ या लहजा प्रसंग के अनुसार अलग-अलग होता है। मसलन जब वह परिचितों के साथ यानी अपने लोगों के साथ होता है, तब सहज होता है। यह सहजता उसकी भाषा में भी दिखती है। वही व्यक्ति जब किसी अनजान के अथवा बहुत प्रतिष्ठित आदमी के सामने होता है, तब वह असहज तथा सतर्क होता है। यह सतर्कता भी भाषा में बराबर नज़र

आती है। आप 'वैतरणी' कहानी में इसे देख सकते हैं — जब मंगतूराम विधायक के सामने फरियाद लेकर जाता है। उसकी अपनी बोली है, जो वह अपने लोगों के बीच सहजता से बोलता होगा। लेकिन विधायक के सामने आने पर उनसे उनकी भाषा में बात करने का प्रयास करता है। उसके संवाद में एक तनाव है — "कैसे तो अंदर से ईंट गहरा गई कि धीरे-धीरे पूरा पानी कीचड़ हो गया। ई चापाकल भी टूटा पड़ा है, कहीं कोई सुनवाई नहीं, सरकारी दफ्तर में अरज़ी देते-देते गोड़ टूट गए।" मंगतूराम की तमाम सतर्कता के बाद भी सहजता ने सेंध लगा दी है। भाषा और बोली गड़मड़ हो गई। मानक भाषा के मानक शब्दों के बीच 'ई' और 'गोड़', अरज़ी जैसे बोली के भेदस शब्द आ गए हैं। लेखिका ने इन शब्दों के प्रयोग से ही इस प्रसंग के तनाव की सफलतापूर्वक व्यंजना कर दी है।

इन्हीं शिल्पगत विशेषताओं से कहानी लैस है हालाँकि शिल्पगत विशेषताओं को मेहनत-मशक्कत से नहीं उभरा गया है, न ही इसे कहानी की मूल संवेदना पर हावी होने दिया गया है। बल्कि यों कहें कि कहानी की मूल संवेदना को उभारने में नीरा परमार की भाषा ने भरपूर साथ निभाया है। यह भी सच है कि शिल्पगत विशेषताओं द्वारा कहानी को सँवारने में नहीं बल्कि सहजता के साथ कहानी के उद्देश्य को, उसकी मूल संवेदना के साथ उकेरा गया है। कुल मिलाकर कहानी कहीं भी लचर या कमजोर नहीं बल्कि सहज ढंग से बड़ी बात कहने की क्षमता रखती है।

13-7 I kjk'k

नीरा परमार की कहानी 'वैतरणी' दलित समाज के जीवन की विडम्बना का बयान करती है। इसमें दलित बस्ती शहर से अलग-थलग श्मशान भूमि के पास बसी हुई है। इसमें गरीबी और अज्ञानता है। यहाँ तक कि पेयजल जैसी बुनियादी सुविधा का अभाव झेलने को ये विवश हैं। अपने इस बुनियादी अधिकार की माँग भी ये दबी जबान में करते हैं। एक बार इलाके में विधायक अपने बड़े भाई के दाह-संस्कार के लिए श्मशान आते हैं। तब डोम समाज मंगतूराम की अगुवाई में अपनी पीड़ा व्यक्त करता है, और बस्ती में एक सरकारी चापाकल गड़वाने की मिन्नत करता है। विधायक ने समस्या समाधान का आश्वासन दिया और इसके लिए एक लिखित अर्जी देने को कहा। कई दिनों के बाद मंगतूराम अपने लोगों के साथ विधायक की कोठी पर अर्जी देने पहुँचता है। उन्हें उनका वादा याद दिलाता है। विधायक अर्जी ले लेते हैं।

बस्ती के लोग खुश होकर चले जाते हैं। तभी विधायक की पत्नी पण्डित की सिफारिश करती हुई पण्डित जी के साथ आती हैं। पण्डितजी शुद्ध-अशुद्ध का भेद, जात-पात का भेद बनाए रखने के लिए और पत्नी की सुविधा के लिए अपने आँगन में चापाकल लगवाने का आग्रह करते हैं। साथ में वे विधायक के मृतक भाई की आत्मा की शांति के लिए दिए गए दान की वस्तुओं के बाद इस चापाकल को भी उसी श्रेणी का बताते हैं, जिससे उनके भाई को मोक्ष मिल सकता है। पण्डितजी द्वारा दिए गए इस प्रलोभन और विधायकजी के चिन्तन-मनन की मुद्रा के साथ ही कहानी का अंत हो जाता है।

इकाई 14 सुमंगल : dkojh

bdkbl dh : ijj[kk

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 हिंदी में दलित कहानी : संवेदना और दृष्टि

14.3 सुमंगली : मूल भाव एवं संवेदना

14.4 दलित स्त्री लेखन और कावेरी की कहानियाँ

14.5 सुमंगली : दलित मजदूर स्त्री का दारुण जीवन

14.5.1 दलित नारी का तिहरा शोषण

14.5.2 पुरुष सत्ता का हिंसात्मक रूप

14.6 कथा शिल्प एवं भाषा

14.7 सारांश

14.0 उद्देश्य

‘सुमंगली’ दलित लेखिका कावेरी की चर्चित कहानी है। कावेरी की यह कहानी उनके ‘द्रोणाचार्य एक नहीं’ कथा संग्रह में संकलित है। इस कहानी में दलित समाज की एक आधुनिक मजदूर स्त्री की दुनिया का यथार्थ है। इस दुनिया में सभ्य समाज के नियम और कानून काम नहीं करते हैं। शोषण का ऐसा चक्र दिखता है जिसमें मानवता भी रहम माँगती-सी दिखती है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप भारत की सामाजिक और जातिगत संरचना को समझ सकेंगे जिनमें एक दलित स्त्री को उसके मानव अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इस समाज व्यवस्था के पुरुषसत्तात्मक वर्चस्व और आतंक को जान सकेंगे जिसमें एक आदमी अत्याचार करने के लिए आजाद है और एक स्त्री उस अत्याचार को सहने के लिए मजबूर है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- दलित स्त्री लेखन और कावेरी की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्रीवादी चेतना से परिचित हो सकेंगे;
- नगर जीवन में दलित स्त्री के बहुआयामी शोषण की दशाओं से अवगत हो सकेंगे;
- दलित स्त्री जीवन की अस्मिता, आकांक्षाओं और सपनों को उनके सामाजिक, आर्थिक संदर्भ में जान सकेंगे;
- दलित स्त्री की रचनाशीलता और चेतना के नवीन रूप को पहचान पाएँगे;
- समाज व्यवस्था में धर्म, संस्कृति और रूढ़िवादिता की शिकार दलित स्त्री के संरक्षण की आवश्यकता को समझ पाएँगे; और
- धर्म, परंपरा, रूढ़िवाद को ढोती समाज व्यवस्था दलित स्त्री के प्रति निरंकुश होकर कैसे उसके प्रति हिंसात्मक रवैया अपनाती है, से परिचित हो सकेंगे।

14-1 Ālrkouk

कावेरी की प्रतिष्ठा हिन्दी के दलित साहित्य में एक चर्चित कथाकार के रूप में है। उनकी कहानियों का संग्रह 'द्रोणाचार्य एक नहीं' प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह की कहानियों ने आलोचकों का ही नहीं पाठकों के एक बड़े तबके का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। दलित स्त्री जीवन के कई अनछुए पहलू इन कहानियों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। कुल मिलाकर इनकी कहानियाँ शोषण के तंत्र को बेनकाब करती हैं जो द्रोणाचार्य की तरह दलितों को उनके अधिकारों से वंचित रखने का षडयंत्र करता है। दलित का सामना एक द्रोणाचार्य नहीं पूरी उस व्यवस्था से है जिसमें सत्ता पर काबिज हर एक शख्स द्रोणाचार्य की भूमिका अदा करता हुआ दिखाई पड़ता है।

कावेरी की जन्मभूमि बिहार प्रांत भले ही आर्थिक रूप से पिछड़ा क्षेत्र है लेकिन सामाजिक चेतना और संघर्षों की यह उर्वरा भूमि है। महानतम दलित चिंतक बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर के प्रेरणा स्रोत महात्मा बुद्ध की यह कर्मभूमि है। साथ ही भूदान, संपूर्ण क्रांति, दलित आदिवासी राजनीति से लेकर जातिगत संघर्षों की यह रणभूमि है। ऐसे ही परिवेश में कावेरी की रचनात्मक ऊर्जा का विकास हुआ है। उन्होंने शिक्षा में अपने उद्यम से एम.ए. और बी.एड की डिग्रियाँ हासिल कीं और अब एक अध्यापक के रूप में ज्ञान का प्रसार कर रही हैं।

बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर ने कभी कहा था कि "ज्ञान, शेरनी के दूध की तरह है, जो इसे पीता है, वह बोलता नहीं दहाड़ता है।" दलित स्त्री लेखन में अगर दुःख और कराह है, तो प्रतिरोध और संघर्ष की दहाड़ भी है। कावेरी की कहानियों में यह दोनों स्वर बराबर मौजूद हैं। हालाँकि इकाई में संकलित कहानी 'सुमंगली' दलित स्त्री के जीवन की पीड़ा, दुःख, वेदना, वंचना और उत्पीड़न का दस्तावेज है।

यह पाठ अन्य पाठों से इस मामले में अलग है कि इसमें लेखक का केवल विचार और उसकी कल्पना ही नहीं बल्कि उसके पास इस जीवन का प्रामाणिक अनुभव भी है। इस यातनापूर्ण त्रास के कई पहलू उसके जीवन के आस-पास घटित होते हैं।

14-2 fgnh e| दलित कहानी : संवेदना और दृष्टि

कहानी ऐसी विधा है जिसमें संवेदनाएँ मुखर हो उठती हैं। इस विधा के द्वारा संवेदनाओं पर विस्तार से रोशनी डालने की गुंजाइश होती है। भावनाएँ संकेतों में ही खत्म नहीं होतीं, बल्कि उन्हें प्रामाणिक उदाहरण घटनाओं, पात्रों और उनके कथनों द्वारा मिलते हैं। इसलिए साहित्य में कहानी हमेशा से चर्चित विधा रही है। अगर हिन्दी दलित कहानी वह भी महिला कहानीकारों की कहानियों के आरंभ और उनकी आवश्यकता पर चर्चा की जाए तो यही कहा जा सकता है कि यह दलित चेतना के संघर्ष, संत्रास, आक्रोश और विरोध की पौध साबित हुई है।

भारतीय वर्ण व्यवस्था ने दलितों पर गुलामी के जो बंधन कसे थे, उन्हें तोड़ने के लिए ही डॉ. आंबेडकर ने दलितों में मुक्ति चेतना जगाई। साथ ही मुक्ति संघर्ष का रास्ता दिखाया। उनका यह आंदोलन सामाजिक, वैचारिक और राजनीतिक आंदोलन था। डॉ. आंबेडकर द्वारा जगाई गई इस संघर्षशील चेतना की ही अभिव्यक्ति है – दलित साहित्य। हिन्दी दलित साहित्यकारों ने सातवें दशक में आकर कहानी विधा को अपनाया। मराठी या कुछ अन्य भाषाओं में यह पहले ही दस्तक दे चुकी थी। सदियों से अमानुषिक प्रताड़ना झेलने के कारण दलित कथाकारों ने अपने रचनाकर्म को एक

आंदोलन माना। इस दौर में मोहनदास नैमिशराय की 'सबसे-बड़ा सुख', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'अंधेरी बस्ती' जैसी कहानियों द्वारा पाठक दलित अस्मिता और दलित चेतना के संघर्ष की आवाज सुन पाए।

आठवें दशक ने हिन्दी दलित कहानी को कई नए रचनाकार दिए। इन कहानीकारों की चेतना सामाजिक परिवेश की तमाम चुनौतियों से टकराती हुई, स्वयं को तलाशती हुई आगे बढ़ी। ये कहानीकार अपने अनुभवों को आधार बनाकर रोंगटे खड़ी कर देने वाली सच्चाई को पाठक के सामने लेकर आए। ओमप्रकाश वाल्मीकि इसी संदर्भ में कहते हैं कि – "हिन्दी कहानी में नई कहानी, अकहानी, समान्तर कहानी और फिर जनवादी कहानी – आदि पड़ावों से गुजरते हुए वर्तमान हिन्दी कहानी का रुझान उसे वैचारिक प्रतिबद्धता से जोड़ता है। यह एक बदलाव था हिन्दी कहानी के लिए जिसमें यथार्थवादी चित्रण और मध्यवर्गीय जिजीविषा का बहुत ही निकटता से सम्बन्ध प्रस्तुत हुआ था और पाठकों ने कहानी के कल्पना लोक और रोमानी मायावी संसार से मुक्त होकर एक ताजगी का अहसास महसूस किया था।" इसी दशक में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी दलित कहानी ने अपनी पहचान शुरू की।

नवें दशक में आकर हिन्दी में दलित कहानी पाठकों के बीच अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल हुई। अर्थात् हिन्दी दलित कहानी ने अपना एक विशाल पाठक वर्ग तैयार किया। 'हंस' ने इसी दशक में कुछ हिन्दी के दलित कथाकारों ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, डॉ. सुशीला टाकभौरे आदि की कहानियाँ छापी। इसके बाद तो 'संचेतना', 'कथानक', 'पश्यन्ति', 'युद्धरत आम आदमी', आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी दलित कहानियों को छापकर पाठकों, आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। इस तरह इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी दलित कहानियों और पाठकों के बीच पुल की भूमिका निभाई। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नवें दशक में ही पहली बार हिन्दी दलित कथाकारों में किसी महिला ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई हिन्दी दलित कविताओं में विमल थोरात, रमणिका गुप्ता सरीखी कवयित्रियों ने तो अपना महत्वपूर्ण योगदान पहले ही देना शुरू कर दिया था। अर्थात् कविताएँ पहले ही दलित नारी लेखन का हिस्सा बन चुकी थीं। अब बारी कहानियों की थी। दलित महिला रचनाकारों ने यह महसूस किया कि दलित नारी के अन्तर्मन की आकांक्षाएँ, उनकी अस्मिता, उनके शोषण की दारुण कथा के हर पहलू को वे अनुभव की प्रामाणिकता के साथ लिख सकती हैं। वे अपने आस-पास ऐसी महिलाओं के जीवन की घटनाओं को देख-सुन चुकी थीं। डॉ. सुशीला टाकभौरे, कावेरी, कुसुम मेघवाल, रजत रानी, मीनू आदि कहानीकारों ने अब कथाओं के विषयवस्तु को विस्तार देना शुरू किया। सामाजिक संकीर्णता, जाति भेदभाव के अलावा कुछ अछूते पहलुओं को उजागर करना शुरू किया। स्त्री लेखन में स्त्री संसार के भीतर चल रहे उहापोह, जाति आधारित तिरस्कार, घृणा और दलित स्त्री के प्रति पुरुषसत्ता का हीनतम व्यवहार, यथास्थितिवादी सोच के विरोध का प्रखर स्वर रेखांकित हुआ है।

डॉ. सुशीला टाकभौरे के शब्दों में कहें तो "परिवार की आर्थिक गतिविधियों में सहभागी होने के बावजूद भी दलित नारी का स्थान परिवार तथा समाज में पुरुष से निम्न रहा। धन, धरती और सत्ता से वंचित रहने के कारण इस वर्ग की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अत्यंत दुर्बल रही। इस कारण इस वर्ग की स्त्रियों का यौन शोषण इतर वर्ग के लोगों द्वारा आसान रहा। इस स्थिति का लाभ जी भर कर तथाकथित उच्च वर्ग ने उठाया।" डॉ. सुशीला टाकभौरे का यह कथन दलित महिला लेखन के मूल उद्देश्य को दर्शाता है। दलित साहित्य में पुरुष रचनाकारों द्वारा जिन बिन्दुओं को अनदेखा कर दिया

गया था, उसे महिला रचनाकारों ने अपने कथा-संसार में शामिल किया। अकारण नहीं है कि कावेरी की कहानी 'सुमंगली' को ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित नारी के अंतर्गम को उकेरने वाली कहानी मानते हैं।

इस प्रकार नवें दशक में आकर दलित कहानी का व्यापक विस्तार हुआ। लगभग सभी पहलुओं को कहानी की विषयवस्तु बनाया गया। अब हिन्दी साहित्य में कहानी का तेवर और कलेवर इतर हो चला था। चाहे दलित समाज का व्यक्ति गाँव की वर्ण व्यवस्था, सामंती व्यवस्था में पिसे या छोटे शहरों और महानगरों में पढ़ लिखकर नौकरी करे कहीं भी वह व्यवस्था के कुचक्र से निकल नहीं पाया। परिणामतः दलितों में आक्रोश, विरोध और संघर्ष की तीव्र चेतना अब कहानियों की पहचान बन गई। इसी के मद्देनजर दलित महिला कथाकारों ने भी मनोयोग से दलित साहित्य में अपनी भागीदारी दी। डॉ. सुशीला टाकभौरे की 'सीलिया' में नायिका सामाजिक उत्पीड़न से लड़कर सम्मान में जीना चाहती है – "और फिर दूसरों की दया पर सम्मान? अपने निजत्व को खोकर दूसरों के शतरंज का मोहरा बनकर रह जाना, बैसाखियों पर चलते हुए जीना-नहीं, कभी नहीं! सिलिया सोचती – 'हम क्या इतने भी लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी तो कुछ अहं भाव है। उन्हें हमारी जरूरत है, हमको उनकी जरूरत नहीं।" यही दलित नारी अस्मिता और आत्मसम्मान की बात इनकी प्रखर चेतना की देन है।"

रजत रानी मीनू की 'सुनीता' कई कठिनाइयों से गुजरकर शिक्षा प्राप्त करती है और बेटों के समक्ष उन्हें पीछे छोड़ते हुए अपनी सम्मानजनक उपस्थिति दर्ज कराती है। "सुनीता के पिताजी ने सुनीता से गाँव का आधुनिकीकरण कराने की बात कही तो उसने मुस्कुराते हुए कहा 'पिताजी मैं क्या कर सकती हूँ? मैं एक लड़की हूँ। यह काम तो आपके बेटे करेंगे, वहीं वंश चालक हैं' छेदालाल बेटी के सामने सिर-झुकाए हुए अपराधी की मुद्रा में खड़े थे।"

कुसुम मेघवाल के कहानी संकलन 'समय के शिलालेख' में जहाँ दलित नारी के अन्तर्मन की व्यथा दर्ज है, वहीं आक्रोश और प्रतिरोध भी है। इनकी 'अंगारा' की नायिका का प्रतिरोध तो पाठकों की कल्पना से परे है। दूसरी ओर रमणिका गुप्ता की 'बहु-जुठाई' में दलित नारियों पर सदियों से हो रहे सवर्णों द्वारा एक निर्मम-निर्लज्ज परिपाटी का पर्दाफाश किया गया है – "सभी की बहू तो ठाकुर जुठालय है और सभे के माय ठाकुर साहब के बाप।"

अब यहाँ कावेरी की अन्य कहानियों पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक जान पड़ता है। 'द्रोणाचार्य एक नहीं' कहानी का सुवास शुरू में अत्याचार को सहन नहीं करता। हेडमास्टर साहब से कहता है – "मैं भीरु एकलव्य नहीं कि आप जैसे द्रोणाचार्य के सामने सब कुछ हार जाऊँ आपके स्कूल में क्या सिर्फ ऊँचे कहाने वाले ही पढ़ेंगे। मुझे नहीं चाहिए ऐसी पढ़ाई।" ऐसा दबंग पात्र कहानी के अंत तक आते-आते व्यवस्था के कुचक्र में अपने को घिरा हुआ पाता है – "उसे जिला आपूर्ति अधीक्षक का पद मिलना चाहिए था। परन्तु झूठा आरोप लगा कर डी.सी. इस पद की (अवन्नति) कर सी.ओ.पोस्ट कर दिया है। चिन्ता में सुवास अपने को डुबोए रहता है उसे लगता है कि द्रोणाचार्य दुनिया में एक नहीं है।"

इसी तरह इनकी 'दरियापुर वाली' कहानी में दरियापुर वाली को अंधविश्वास में भरकर चुड़ैल की माँ करार दिया गया। जिसके लिए आशंका है कि वही धनेश्वर के बच्चे को मार डालती है। उसके बच्चे कुपोषण के शिकार हो मर जाते हैं। छठी बार जब मरा बच्चा पैदा होता है तो ओझा के साथ मिलकर योजनानुसार आधी रात को गहरी नींद में उस पर वार किया जाता है। यह कहते हुए कि चुड़ैल की माँ हो लाख धमकी देने के बावजूद

अपनी बेटी को मना क्यों न किया। इस बच्चे को भी तुम्हीं लोगों ने मारा है। इस कहानी में दिखाया गया है कि कैसे पढ़े-लिखे लोग भी जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि अंधविश्वास को मानते हैं। यहाँ तक कि पीएच.डी. की हुई समाजसेविका, दरोगाजी सभी अंधविश्वासी निकले और ओझा द्वारा मिली धमकी पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। इस कहानी में भी 'सुमंगली' की तरह ही अत्याचार सहने को मजबूर है दरियापुर वाली। जिसका हश्र कुछ यूँ होता है – “चोटी पकड़कर घसीटते हुए बाहर निकाला बेचारी चिल्लायी कि मुँह पर गरम चिमटा। घसीटते हुए पूजा स्थल पर लाया कमर में बँधी साड़ी कटो छूट गयी, पता नहीं। शरीर पर नया कपड़ा भी नोचकर फाड़ डाला। और बकने लगा बोल तू बेटी को क्यों नहीं मना की। तुमको कब से चेतावनी दी गयी थी इसके साथ ही गरम लोहे की सलाख उसके शरीर पर। .. वह अचेत हो गयी।”

14-3 lexyh kkojh ey Hkko ,o lonuk

कावेरी द्वारा रचित कहानी 'सुमंगली' कथा नायिका सुगिया के त्रासद जीवन का दस्तावेज है। सुगिया एक मेहनतकश मजदूर है जिसे अपने जन्म और पालनहार के बारे में कुछ भी पता नहीं है। वह आठ-नौ वर्ष की उम्र से ही खुद को ठेकेदार की रखैल के रूप में देखती आई है। बारह वर्ष की छोटी उम्र में ही वह औरत बना दी गई। आज सुगिया का अपना कहलाने वाला कोई नहीं। मानवता के नाम पर भी जो प्यार उसे मिलना चाहिए था वह सुगिया की कुतिया मंगली ने दिया। कहानी के शीर्षक पर गौर करें तो 'सुगिया की मंगली, अर्थात् 'सुमंगली'। कहानी में सुगिया, मंगली (कुतिया) ठेकेदार, दुखना (सुगिया का पति), दुखना की माँ, सुगिया का बच्चा सुखदेव इतने ही पात्र हैं।

बिल्डिंग बनाने वाले ठेकेदार के चंगुल में फँसी निरीह सुगिया क्षुब्ध होती है कि मेहनत से जो मजदूर बिल्डिंग बनाते हैं, उन्हें उसमें कुछ दिन चैन से रहने का हक नहीं। एक दिन ठेकेदार मासूम सुगिया के साथ धिनौनी हरकत करता है, और सुगिया दुखना की माँ की गोद में रोती है तब दुखना की माँ ने सांत्वना देते हुए इस तबके का एक नंगा सच सामने रख दिया। यही नंगा सच कहानी के उद्देश्य को सामने लाता है – “एकदम चुप हो जा वर्ना उस पिशाच को अगर मालूम हो गया तो तेरी चमड़ी उधेड़ कर रख देगा, हाँ गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती हैं और उसके पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है”। भूखों मरने की नौबत आने के डर से सुगिया अपने अत्याचार का विरोध नहीं कर पाती। सुगिया दुखना को ठेकेदार के विरोध में खड़ा होने को उकसाती है। मगर दुखना में इतनी हिम्मत नहीं होती है। चौदह वर्ष की छोटी उम्र में सुगिया ठेकेदार के बच्चे की माँ बनने वाली है, तब डर के मारे ठेकेदार दुखना को डाँटकर सुगिया से सगाई करवाता है। एक दिन दुखना राजमिस्त्री को ईंट गारा देते समय चौथे तल से नीचे गिर जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। सुगिया के जीवन में दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। दुखना ने सब जानते हुए भी सुगिया के बच्चे को पिता बनकर अपनाया था। सुगिया के दुःखों का पहाड़ अभी भी कम न हुआ। एक दिन उसके बेटे सुखदेव को जोर का बुखार आता है। सुगिया के पास इतने भी पैसे नहीं होते हैं कि वह बेटे का इलाज करवा सके। ठेकेदार के ऊपर आक्रोश होने के बावजूद सुगिया को यह ख्याल आता है कि ठेकेदार ही तो इस बच्चे का असली बाप है वह जरूर मदद करेगा। यही सोचकर वह ठेकेदार के आगे गिड़गिड़ाती है लेकिन हवसी ठेकेदार उसे पैसे देने के पहले अपनी हवस मिटाना चाहता है। सुगिया के लाख गिड़गिड़ाने मिन्नतें करने पर भी वह बच्चे को उसकी गोद से छीनकर अलग कर देता है। उसके याद दिलाने पर कि 'आखिर तुम्हारा ही तो बेटा है। पहले इसकी जान देखो'

वह हैवान उसे गाली देते हुए जान से मारने की धमकी देता है। साथ ही खबरदार भी करता है — “सौ मर्द के पास रहकर मुझे बदनाम करती है। खबरदार जो दुनिया की गन्दगी को मेरे मुँह पर फेंकने की कोशिश की।” सुगिया बच्चे की जान बचाने के लिए अपनी कुर्बानी देती है। ठेकेदार उसे पैसे भी नहीं देता। रोती हुई सुगिया बच्चे को लेकर कूड़ा फेंकवाने वाले ठेकेदार के पास जाती है। कहना न होगा यहाँ कहानीकार ने एक कड़वे सच का पर्दाफाश करते हुए बताया है — “पर हर ठेकेदार का रूप उसे एक जैसा लगा। उसकी जवानी को घूरती हुई दो खूँखार आँखें हर जगह मिलीं।” हारकर सुगिया एक डॉक्टर के आगे याचना करती है। डॉक्टर ने बच्चे को देखकर कहा — “बेटी तुमने देर कर दी। अब कोई भी डॉक्टर इसे जिन्दा नहीं कर सकता।” बहुत कोशिश के बाद उसे विश्वास कराया गया कि उसका बच्चा अब जिन्दा नहीं है। सुगिया के दुखों का अन्त यहाँ भी नहीं होता। जवान बेटे और पोते की मौत के दुख से सुगिया का अन्तिम सहारा उसकी सास भी चल बसी। सुगिया के पास अब उसकी हमदर्द मंगली ही थी। पलेश बैक शैली में लिखी गई इस कहानी का बड़ा ही मार्मिक अंत है — “मंगली तुझमें और मुझमें क्या फर्क है।” किस्मत को रोती सुगिया अपनी तुलना उस असहाय कुतिया से करती है। यह स्त्री अस्मिता पर दारुण दुख की पराकाष्ठा है। आज भी किसी कामांध बर्बर पुरुष के आगे सुगिया जैसी कितनी ही असहाय मासूम बेबस जीवन जीने को मजबूर हैं। ऐसी स्थिति में हमारे समाज के रूग्ण चेहरे और आंतरिक रूप से सड़े-गले ढाँचे पर यह कहानी सवाल उठाती है। ऐसा समाज तो अपने आपको सभ्य और विकसित कहलाने का हकदार नहीं। कामांध बर्बर ठेकेदार की तुलना किसी कामांध बर्बर जानवर से ही हो सकती है।

f'kYi vkj dyki{k

जहाँ तक लेखिका की भाषा एवं कथाशिल्प का प्रश्न है तो यह कहा जा सकता है कि इस कहानी का प्रभावशाली पक्ष है भाव संवेदना और समाज का यथार्थपरक चित्रण। भाषा में थोड़ा अनगढ़पन है। मगर कहानी की सहज और मुहावरेदार भाषा कहानी के साथ न्याय करती है। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं — “अपने गिरेबान में झँका, अभागे का सौभाग्य, सिर पर पहाड़ गिर पड़ा, पहाड़ भी जिन्दगी, आदि। साथ ही भदेसपन को समेटे इनकी शब्दावलियाँ कहानी के यथार्थ को निकट बनाए रखती हैं, जैसे कमिन, छिनाल—पतूरिया, एलाउटमेंट—फेलाउटमेंट, चारतल्ला, आगेमाय आदि। कथा में पलेश बैक शैली का अच्छा इस्तेमाल किया गया। हालाँकि एक-दो जगह भाषा बनावटी हो गई है। जब सुगिया का पति मर जाता है तब वह बनावटी भाषा में रोती है। साथ ही ‘इधर तो आ मेरी बुलबुल’ जैसे वाक्यांश में बनावटीपन की झलक आती है। मगर कहना न होगा कथानक, उद्देश्य, भाव-संवेदना के यथार्थचित्रण आदि को ध्यान में रखें तो कहानी अपने उद्देश्य में सफलता हासिल करती है। पुरुषसत्ता और अर्थ तंत्र की अमानवीय प्रवृत्तियों को उजागर करती है और एक नई समतावादी समाज संरचना को रचने का संकल्प करती है।

14-4 nfyr L=h y[ku vkj dkojh dh dgkfu;k

कावेरी की कहानियों के पात्र अगर दबंग हैं, स्वतंत्र जीवन जीने की लालसा रखते हैं, अन्याय के खिलाफ जाते हैं। इन्हीं तथ्यों की अगली मिसाल है ‘झलकी’ शीर्षक कहानी। ‘झलकी’ कहानी की झलकी की शादी बूढ़े हारो कोमरी से हुई है, जो पैसे कमाने के चक्कर में कोलवरी में रहता है। यहाँ खेती-खलिहानी, ट्यूबवेल, गृहस्थी आदि संभालती अकेली झलकी के काम में हाथ बँटाने वाले गंगू सिंह के साथ वह सम्बन्ध बनाती है। बिना इस बात की परवाह किए कि समाज क्या कहेगा। वह अपनी एक ब्याहता और एक

कुँआरी बेटी को भी छोड़कर गंगू के साथ चली जाती है। अपने अनमेल विवाह को झेलते रहने से कहीं अच्छा उससे मुक्त होकर चले जाना ही उसे भला लगा। लेकिन उसका यह फैसला भी उसे पुरुष के शोषण-दमन से मुक्ति नहीं दे पाता।

‘प्रायश्चित’ कहानी में भी कावेरी ने दीपू को अभावों और अपमानों के बीच घिरा पात्र दिखाया है। दीपू में हुनर है। एक अच्छा चित्रकार, होनहार विद्यार्थी होने के बावजूद वह पैसों के अभाव में आगे पढ़ाई नहीं कर पाता। ट्यूशन कराकर गुजारा करता है। उसके पिता ने जिस सेठ से कर्ज लिया था उसका सूद चुकाने की खातिर सेठ की लड़की को ट्यूशन पढ़ाता है ताकि रूपाली डॉक्टर बन सके। वह रूपाली को चाहने लगता है लेकिन रूपाली उसे अपमानित करती हुई उसकी औकात उसे बता देती है। पलेश बैंक में चलती इस कहानी में जब रूपाली को पता चलता है कि उसे हाउस सर्जन बनाने में जिस दीपू का योगदान है वही पैसों के अभाव में अस्पताल में दम तोड़ देता है। रूपाली को ग्लानि होती है और वह पूजा स्थल पर दीपू के चित्र की आरती उतारती दिखती है।

वास्तव में कावेरी की इन सभी कहानियों पर गौर करें तो सभी कहानियों के मुख्य पात्र शोषण के शिकार हैं। कहीं-न-कहीं अपमानित प्रताड़ित और समाज द्वारा दुकराए गए हैं। अत्याचार को सहते जाना ही इनकी नियति है। ‘झलकी’ अगर स्वतंत्र और साहसी है तो भी अंत में गाँव वालों की अटकलें सामने आती हैं कि झलकी को गंगू भूमिहार ने शहर में ले जाकर बेच दिया या उससे वह धंधा करवाता है। इस तरह यह साहसी पात्र भी तथाकथित सवर्ण के शोषण का शिकार बनती है। ‘द्रोणाचार्य एक नहीं’ के पात्र सुवास में भी प्रतिरोध की चेतना है फिर भी उसे जीवन के हर मोड़ पर इतना अपमानित होना पड़ा है; इतना छला गया है कि आज बड़ा अफसर होने के बावजूद उसे उसके पद से नीचे का पद मिलता है। उसका तबादला असुविधाओं से भरी जगह में होता है। स्कूल के दिनों से मिलते आ रहे अपमान में अफसर बनने के बाद भी न तो तबदीली आई है न उसे दबाए जाने की प्रक्रिया थमी है। अंत में यहाँ भी वही नतीजा निकलता है। लगातार हो रहे अपमान, शोषण और दमन ने सुवास के प्रतिरोध की क्षमताओं का ही दमन कर डाला है। अंत में यहाँ भी यह पात्र शोषण के कुचक्र में फँसा दिखाई देता है। इस तरह कावेरी की कहानियों में उनके पात्र शोषण को सहन करते रहते हैं। इस सहने की सीमा का लगता है कोई अंत नहीं है। एक अंतहीन शोषण बस शोषण की मिसाल है इनकी कहानी ‘सुमंगली’।

इन्ही सब विभिन्न तेवर के बीच कावेरी की ‘द्रोणाचार्य एक नहीं’ कथा-संग्रह की कहानियाँ दलित नारी की अन्तर्दशा दिखाकर पाठक के रोंगटे खड़ी कर देती हैं। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने कहा है – “कावेरी की सुमंगली दुखभरी गाथा है – लेकिन पढ़ने वालों के मन में दुःख देने वाले के लिए घृणा और क्रोध पैदा करती है। यही उसकी सफलता है।”

शिल्पगत दृष्टिकोण से अगर देखें तो कावेरी की कहानियाँ बहुत सधी हुई नहीं मानी जाएँगी, लेकिन डॉ. एन.सिंह के शब्दों में – “दलित कथा की शक्ति शिल्प में नहीं, सत्य में है।” उनके इस कथन के सहारे दलित कहानी के मिजाज को समझना आसान होगा। आज समाज के बदलते परिवेश में यथार्थपरक संवेदनाओं को उद्घाटित करती हुई हिन्दी की जो दलित महिला कथाकार सक्रिय हैं वे हैं, डॉ. सुशीला टाकभौरे, कावेरी, कुसुम मेघवाल, कावेरी, हेमलता माहेश्वर, सुमित्रा महरोल, पूनम तुसामड, रजत रानी मीनू आदि। वास्तव में “हिन्दी दलित कहानी की यह यात्रा सहज और सरल यात्रा नहीं है। लम्बी संघर्ष यात्रा है, जो सातवें दशक से नवें दशक पर काँटों पर चलते हुए लहुलुहान होकर भी अपने विस्फोटक तेवर की पहचान बनाने में सफल रही है। दलित कहानी ने

समस्याओं से मुठभेड़ की है। अपने सर्जनात्मक, आक्रोशित स्वर को यथार्थ की भूमि पर खड़ा करके बदलाव के नए आयाम स्थापित किए हैं। यथार्थ की संघर्षपूर्ण स्थितियों, सामाजिक विषमताओं, भेदभाव, अन्तर्विरोधों को चित्रित करने की प्रवृत्ति उसने किसी दबाव या प्रतिक्रिया के तहत ग्रहण नहीं की है बल्कि यह उसका अपना स्वाभाविक और वस्तुनिष्ठ स्वरूप है।” (ओमप्रकाश वाल्मीकि)

14-5 lexxyh % nfyr etnj L=h dk nk : .k thou

आज तक दलितों का गाँव में सामंतों, सवर्णों द्वारा शोषण होता आया है। इसमें गाँव के दबंग ज़मींदार से लेकर पंचायत तक सभी शामिल होते हैं। लेकिन कहानी में सुगिया का शोषण करने वाला कोई लम्बरदार या ज़मींदार नहीं बल्कि ठेकेदार है जो पूँजीवादी तंत्र का शक्तिशाली हिस्सा है। पूँजीवादी तंत्र में शहरों के निर्माण के हर एक काम के लिए दी जाने वाली ठेकेदारी में उसकी पूँजी लगी होती है। इसी पूँजी के बल पर वह अनेकानेक ठेके लेने में सफल हो जाता है। निर्माण के काम में लगे मजदूर उसी की मेहरबानी पर टिके होते हैं। यह क्षेत्र उसका एक साम्राज्य होता है जिसमें मजदूरों के शोषण मानो बेलगाम अधिकार भी दे दिया। मजदूर मकान बनाते हैं और उन्हीं मकानों से बेदखल कर दिए जाते हैं। इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए सुगिया कहती है - “*मर-मरकर घर तैयार करो पर हरामज़ादे थोड़े दिन भी चैन नहीं लेने देते। फेंको-फेंकों सामान बाहर निकालो! मकान ‘एलाउटमेंट’ हो गया।*” पर उसे समझ में नहीं आता कि यह मुआ ‘एलाउटमेंट’ और ‘फेलाउटमेंट’ क्या होता है। इस व्यवस्था में पुलिस प्रशासन और कचहरी जैसी संस्थाएँ भी होती हैं। लेकिन कहानी में ये संस्थाएँ कभी अपनी मौजूदगी दर्ज नहीं करातीं। सुगिया एक स्त्री है और ऊपर से मजदूर। अनुभव यही कहता है कि हमारे शासन की संस्थाएँ कभी कमजोर के पक्ष में काम नहीं करती हैं। यहाँ तक कि मीडिया की चिंताएँ उच्च वर्ग और मध्य वर्ग तक सिमटी रहती है। दलित स्त्री के उत्पीड़न, दमन होने पर ये संस्थाएँ कभी सक्रिय दखल नहीं देती हैं। इसकी सक्रियता सत्ता, अथवा ठेकेदार की सुरक्षा के लिए होती है। बाल मजदूर कानून का सरेआम बेशरमी से उल्लंघन होने पर भी कानूनी व्यवस्था खामोशी ओढ़ लेती है। ईंट भट्टे, भवन, सड़क निर्माण में बाल श्रमिकों से अल्प मजदूरी पर धड़ल्ले से काम करवाया जाता है। सभ्य कहा जाने वाला शहरी समाज इसे अनदेखा करने का आदि हो चुका है जैसे यह काम केवल न्याय, विधि व्यवस्था या फिर स्वयंसेवी संस्थाओं का ही माना जाता है जिससे ठेकेदार वर्ग ने इसका फायदा उठाते हुए मुनाफा कमाने का एक जरिया बना लिया है। मुनाफा कमाने के ऐवज में शोषण, दमन, उत्पीड़न जैसी अमानवीयता को अपनाकर ही पूँजीवाद और जातिवाद आज विकरात्मक रूप ले चुका है। कावेरी ने सुगिया के दारुण जीवन की कठोर, हृदयविदारक सच्चाई को बहुत ही मार्मिक ढंग से उद्घाटित किया है। डॉ. विमल थोरात ने कहा है - “*सुगिया को अपनी कहानी मालूम नहीं। किसने उसे जन्म दिया और किसने पाला, कुछ भी तो नहीं जानती वह। जब से होश संभाला, तभी से उसकी कहानी की शुरुआत हुई है। जब वह आठ या नौ साल की थी, अपने को ठेकेदार की रखैल ही समझा था।*”

सुगिया ठेकेदार की क्रूरता के आगे अकेली है और बेबस भी। उसकी बेबसी का हाल यह है कि अत्याचार का शिकार बनने के बाद भी उसके चुप रहने में ही उसकी खैर है। दुखना की माँ उसे समझाती है - “*चुप रह बेटे चुप रह। यह तो एक न एक दिन होना था, पर तू बड़ी अभागन है री। जो इस छोटी उम्र में ही सब कुछ झेलना पड़ा। अब एकदम चुप हो जा।*”

यह चुप्पी एक आम पाठक को “सुमंगली” की सुगिया या बाल मजदूरन की कमजोरी लग सकती है कि आखिर क्यों वह विरोध नहीं करती? लेकिन यह उस बच्ची की नहीं उस

असंवेदनशील समाज की कमजोरी है जिसने दलित और मज़दूर स्त्रियों के चौतरफा शोषण होते हुए देखते रहने की आदत बना रखी है। सुगिया को पता है कि दलित और मज़दूर स्त्री के संघर्ष या विरोध में कोई साथ देने नहीं आएगा। फिर उस विरोध के अंजाम की कल्पना ही उसका साहस क्षीण कर देती है।

पितृसत्ता के वर्चस्व को बयान करती यह सच्चाई स्त्री की अधीनता की कहानी है। मज़दूरी के बदले में जो पूरी मज़दूरी की हकदार है उस पर शारीरिक शोषण क्यों कर लाद दिया गया है? अबोध बालिका दैहिक अत्याचार सहने को मजबूर है क्योंकि सुरक्षा देने प्रदान करने वाली राज्य की संस्थाएँ स्त्री-बालिका शोषण के प्रति असंवेदनशील हैं। राज्य द्वारा स्त्री को हासिल सुरक्षा देने में कोताही करने पर न्याय देने में हुई देरी पर या कर्तव्य पालन में किए गए भेदभावपूर्ण रवैये पर किसी प्रकार की जवाबदेही तय नहीं है। इसलिए दमनकारियों द्वारा शोषण का सिलसिला अविरोध जारी है। जिसके कारण ही सुमंगली जैसी बेटियों का जीवन असुरक्षित है।

जहाँ जिन्दगी में अपने को बचा ले जाना ही संघर्ष का मूल मकसद है, तो फिर कैसा विरोध और किसका विरोध। सभी कमजोर स्त्री के शोषण को आतुर बैठे हैं। सुगिया ने इस बात को अपने अनुभव से जाना है – *“अपने दुर्भाग्य पर सुबकती सुगिया बच्चे को छाती से चिपकाए कूड़ा फेंकने वाले ठेकेदार के पास भागी-भागी गई। पर हर ठेकेदार का रूप उसे एक जैसा लगा।”*

सुगिया अपने जीवन को सँवारने का प्रयास करती है। माँ-बाप और परिवार के सुख से वंचित सुगिया ने दुखना को अपना हमदर्द खुद बनाया था दुखना से ही पत्नी का रिश्ता बखूबी निभाया। मानवीय रिश्तों से मिली सुरक्षा व्यक्ति को निश्चिंतिता देती है। लेकिन भवन की दुर्घटना में जब दुखना मारा गया तो यह सुरक्षा का कवच भी उससे छिन गया। उसके अकेलेपन का लाभ उठाने कई आए लेकिन मदद के लिए कोई इंसान नहीं आया। एक समाज की इससे बड़ी क्रूरता क्या होगी कि वह अपने ही सदस्य का तिरस्कार करें और तमाम प्रेम, मानवीय ऊष्मा से वंचित रखें।

frgj 'kk'k.k l efDr dk l?k'k

“भारतीय समाज में मेधा और दैहिक श्रम के बीच गहरी फाँक है जो इसे शोषण का खुला मैदान बना देती है” मज़दूरी को निचले दर्जे का काम माना गया और दलित जातियों के लिए मानो इसे शत-प्रतिशत आरक्षित कर दिया गया। दलित समाज गाँव में खेत मज़दूरी करता है। गाँव से काम की तलाश में शहर की ओर पलायन करता है तो यहाँ वह असंगठित क्षेत्र का मज़दूर बन जाता है। वह पेट के लिए किसी भी शर्त पर काम करता है। वास्तव में उसकी आर्थिक शक्ति अपने पूरे शारीरिक श्रम के बाद भी मुश्किल से गुजर-बसर करने लायक ही बनती है। सुगिया भी इसी प्रकार की दिहाड़ी मज़दूर है जो भवन निर्माण में काम करती है। कोई स्त्री इन कार्यों को अपनी पसंद से नहीं करती। सुगिया जैसी स्त्रियों के हालात इस प्रकार हैं कि उनके पास कोई विकल्प नहीं है, यही उनकी मजबूरी है, यही उनकी नियति बन गई। यह मजबूरी ही शोषण की वजह है और ठेकेदारों के फायदे का सबब भी। अपनी कमाई से वह केवल जिंदा रह सकती है। एक गृहस्थ के रूप में भी वह अपनी जरूरतों के लिए ठेकेदार के ऊपर निर्भर है। आर्थिक आजादी का अर्थ अगर वैध जरूरतों को पूरा कर ले जाने की क्षमता से है, तो सुगिया मज़दूरी करने के बाद भी पराश्रित है, ठेकेदार पर निर्भर है। ठेकेदार इस गणित को जानता है। वह स्त्री मज़दूरों को उनकी न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं देता, जिससे आर्थिक विवंचना में रहने वाला हर मज़दूर ठेकेदार के पास ही कर्जा लेने पहुँच जाता है। आर्थिक रूप से निर्भरता इंसान को कितना दयनीय, असहाय बना देता है, यह इस कहानी में

बखूबी दर्शाया है। सुगिया की यही स्थिति उसके दैहिक शोषण का कारण है। ठेकेदार हमेशा इसी ताक में रहता है कि जब वह मदद के लिए याचना करने आए तो उसके देह पर अधिकार जमा ले। “आ, पहले इधर तो आ मेरी बुलबुल! मुझे विश्वास था कि तुम खुद मेरे पास आओगी। मुझे बुलाना नहीं पड़ेगा।”

कहानी में शोषण का एक अंतहीन रूप दिखता है, जिसके समाप्त होने की कोई उम्मीद भी नहीं दिखाई देती है। कहानी के आरंभ में भी सुगिया अकेली है और कहानी के अंत में भी वह अकेली रह जाती है। सुगिया की यह त्रासदी वास्तव में दलित मजदूर स्त्री जीवन में तिहरे शोषण को उजागर करती है।

समस्या अगर सामाजिक है तो उसका समाधान भी सामाजिक रूप से ही हो सकता है, व्यक्तिगत रूप से नहीं। सुगिया का दारुण शोषण इसलिए हो रहा है क्योंकि वह दलित समाज की है। लेकिन उसका समूचा संघर्ष खुद को बचाने का, अकेले का संघर्ष है। क्रूर समाज के सामने अकेली स्त्री का संघर्ष की परिणति में ही असफलता होती है। लेखिका इसी सत्य को उजागर करती है। दलित साहित्य मानव को केन्द्र में रखकर, एक समतामूलक समाज की रचना का संकल्प करता है। शोषण की ब्राह्मणवादी और पितृसत्तावादी परंपराओं का विरोध करते हुए समता, स्वाधीनता और न्याय के मूल्यों का समाज बनाना इसके उद्देश्य है। वह उस दिशा की ओर संकेत करता है जो अंततः शोषणमुक्त समताधारित समाज व्यवस्था को कायम करने में सहायक होगा।

महात्मा बुद्ध के शब्दों में –

“तुम्हेहि किच्चम आतप्पम”

अर्थात् मैं तुम्हें केवल मार्ग बता सकता हूँ चलना तो तुम्हें ही होगा। क्योंकि सत्य एक आत्म खोज है कोई इसे दूसरे को दिला नहीं सकता। कहानी ने भी यही कार्य किया है और इसी में कहानी की सार्थकता है।

14-5-1 nfyr ukjh dk frgjk 'kk" k.k

गरीबी ऐसा दुष्चक्र है कि एक बार इसके दायरे में कोई आ जाए तो इसके चक्र से उबर पाना आसान नहीं होता है। सुमंगली का चक्र इससे भी गहरा है, एक तो वह अनाथ गरीब मजदूर है, दूसरे वह दलित है और तीसरे वह एक स्त्री है। ‘सुमंगली’ में लेखिका ने उन हालात को दिखाया है, जिसमें वह जकड़ी है। कहानी पढ़ने के बाद पाठक का मन कहता है कि आखिर वह बगावत क्यों नहीं करती? लेकिन यहाँ ध्यान देने योग्य बात यही है कि वह तिहरे शोषण का शिकार है। गरीबी उससे मजदूर का काम करवाती है, वरना अन्य भारतीय नारी की तरह वह भी या तो घर गृहस्थी संभालती या पढ़ की परिणति में ही लिखकर जीवन की परिणति में ही स्तर को सुधारने की ओर अग्रसर होती। लेकिन यहाँ मजदूरी ने सुगिया को बाजार में खुला छोड़ दिया। जहाँ पर उसे कमाना है ताकि दो जून रोटी जुटा सके। उसकी पूरी जिन्दगी दिन और दिहाड़ी के क्रूर गणित पर टिकी है। उसे एक की परिणति में ही एक दिन जीना है तो अगले दिन की मोहलत लेकर।

दूसरा सच यह है कि वह दलित है। सुगिया जाति व्यवस्था के जिस पायदान पर है, उसमें वह विकल्पहीन दिखाई देती है। उसकी वंचना सदियों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था की देन है। उसके लिए तो तीनों वर्णों की और पति की सेवा करना उसका पहला कर्तव्य है। स्त्री और अछूत के समता, स्वतंत्रता के अधिकार ‘मनु’ ने छीन कर उसे मात्र दासी आश्रित, निर्भर, अबला की स्थिति में रखा है। अधिकारों के अभाव ही उसे आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर बनाता है जिससे उत्पीड़न, यौन हिंसा की उसे आसान शिकार

बना देते हैं। बच्चे की जान बचाने के उसके प्रयास जब उसे ठेकेदार के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं तो, उसे ठेकेदार की हवस का शिकार हो जाती है। “एक ओर उसके शरीर से खिलवाड़ हो रहा था दूसरी ओर उसका बच्चा निर्जीव सा पड़ा था।” मज़दूर के रूप में उसका शोषण बाजार व्यवस्था कर रही है, तो दलित के रूप में उसका शोषण परंपरावादी जाति व्यवस्था कर रही है।

तीसरा ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि वह एक स्त्री है। कहानी में इस स्तर पर वह शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार बनती है। इस स्तर पर पुरुष, सामंती और शहर की बाजार सत्ता सब मिलकर उसका दोहन करते हैं। स्त्री के रूप में उसकी यातना सबसे दर्दनाक है। नौ-दस वर्ष की उम्र से ठेकेदार की रखैल के रूप में यातना भोगने के बाद – पति का सहारा उसके रेगिस्तान जैसे सूने जीवन में प्रेम और सुरक्षितता का अहसास दे पाया था। जो कुछ पल के लिए ही रह पाया। स्त्री की सबसे बड़ी कामना उसकी संतान होती है। लेकिन अभाव की जिन्दगी ने सुगिया के बच्चे की साँसों की डोर कुछ ही समय में तोड़ दी। यह एक ऐसा कठोर सच था, जिसे जानने के बाद वह सन्न रह जाती है। दर्द जब हृदय से ज़्यादा बढ़ जाता है, तो कभी-कभी इंसान उसे महसूस करना बंद कर देता है। ऐसा ही सुगिया के साथ होता है जब बड़ी कोशिश के बाद उसे विश्वास कराया गया कि उसका बच्चा मर गया है। तब उसके करुण क्रंदन से दूसरों की आँखें भी नम हो आईं।

‘सुमंगली’ कहानी में कावेरी का उद्देश्य दलित स्त्री की परिस्थितियों को उनकी सम्पूर्णता में दिखाना है। दलित स्त्री के जीवन का उद्देश्य भी मानवीय गरिमा के साथ जीवनयापन करना है। लेकिन पितृसत्ता, पूँजी सत्ता और जातिसत्ता उसके मकसद के सामने दीवार की तरह हैं। वह दलित पुरुष से अलग तिहरे शोषण का शिकार है। शोषण के इस रूप के बारे में प्रो. विमल थोरात का मानना है – “जाति, लिंग और वर्ग आधारित तिहरे शोषण को झेलती – दलित स्त्री उन विषमतावादी नैतिक मूल्यों, पुरुषसत्ताओं की अधीनता की राजनीति को नकारती है। एक स्वतंत्रचेता मानवी के रूप में सामाजिक समता, आर्थिक समता और लिंग आधारित समता की हकदार वह इस सामाजिक यथार्थ को बदलना चाहती है।”

सुगिया के मन में भी ऐसे ही मानवीय जीवन की कामना है, भले ही उसके जीवन में “प्यार के झोंके तो सपने की तरह आए और चले गए।” कावेरी ने कहानी के माध्यम से जाति, लिंग और वर्ग के स्तर पर सुगिया के सपने को स्वर दिया है, समाज में बदलाव की जरूरत को रेखांकित किया है। सुगिया पराजित है लेकिन उसकी पराजय अंतिम नहीं है। कहानी इस अर्थ में सार्थक है कि वह दलित स्त्री के संघर्ष की लौ को जलाए रखती है, और भविष्य में विजय की उम्मीद को जिन्दा रखती है। दलित कवि पूरन सिंह के शब्दों में कहें तो –

“मैं हारता रहा! इसका यह अर्थ नहीं कि
मैं जीतूँगा ही नहीं। हारना तो
तब होता है जब। युद्ध,
समाप्त हो जाय।”

14.5.2 पु#“I सत्ता का हिंसात्मक रूप

भारत की समाज व्यवस्था पितृसत्तात्मक है अर्थात् पिता के रूप में पुरुष की ही सत्ता रहती है। समाज में सिद्धांततः स्त्री को देवी बताया गया लेकिन व्यवहार में वह दासी ही रही। ‘सुमंगली’ कहानी में सुगिया के साथ भी कुछ ऐसा ही घटित होता है। सुगिया के समक्ष

पुरुष वर्ग रक्षक नहीं भक्षक बन कर आया। पति और बेटे के रूप में मिला सानिध्य बस कुछ क्षण तक ही रहा। मौत के क्रूर हाथों ने उन्हें जल्द ही छीन लिया। अकेली रह गई सुगिया। बाद में भी उसके जीवन में जो पुरुष आए वे उसे बसाने नहीं बल्कि उजाड़ने के लिए ही आए। एक बार उसका सुहाग उजड़ गया, तो दूसरी बार उसकी कोख। और अब जिन्दगी में ठेकेदार का आतंक ही मौजूद है। जिनके लिए स्त्री उपभोग की वस्तु है। पत्नी अथवा माँ के रूप में कम-से-कम इंसानी रिश्ते का साथ होता है, जो मानवीय अस्तित्व को बनाए रखता है। लेकिन जातिवादी समाज ऐसी व्यवस्था चाहता है, जहाँ कुछ लोगों की यौन सनक स्वतंत्र रूप से पूरी हो सके। इस तरह स्त्री उनके हवस को पूरा करने वाली उपभोग की वस्तु बन जाती है। इसी वर्चस्ववादी निरंकुश क्रूर समाज ने सुगिया को ऐसी नियति में पहुँचा दिया है, जहाँ वह सोचती है - "उजड़ी हुई गृहस्थी को वह अब हरा-भरा नहीं देख सकती। वह सोचती शरीर नोचवाने से अच्छा किसी के साथ लग जाए। परन्तु कोई भी तैयार न था। जवानी भर उसके शरीर को ठेकेदारों ने अपनी हवस का शिकार बनाया। इसके अलावा कोई चारा नहीं था सुगिया के पास। अब तो हमदर्द के रूप में मंगली मिल गई थी।"

इस अकेलेपन में मंगली कुतिया ही उसके साथ है। सुगिया को इस समाज से उम्मीद थी कि सहानुभूति के दो शब्द कोई उससे कहे या उसके दुःख को बाँटे। मगर ऐसा कोई नहीं था जो उसे दो-चार पल का भी साथ दे। शायद मंगली ने उसके जीवन के इस खालीपन को भरने की कोशिश की। उसका दर्द मंगली जो एक कुतिया है, लेकिन उसने सुगिया के जीवन का सूनापन कुछ कम कर दिया। इसी पल वह जानवर की इंसान का दुःख कम करने का कारण बना। जिससे मंगली से वह सुमंगली कहलाने की हकदार भी।

14-6 dFkk f'kYi ,o Hkk"kk

कावेरी की कहानियों की भाषा आम बोलचाल की भाषा में भी एक खास वर्ग या तबके को इंगित करती है। जहाँ तक 'सुमंगली' की भाषा एवं कथा-शिल्प का प्रश्न है, तो यही कहा जा सकता है कि इस कहानी का प्रभावशाली पक्ष है भाव-संवेदना एवं यथार्थपरक चित्रण के लिए जिस भाषा का इस्तेमाल हुआ है - वह है सहज-सरल बोलचाल की भाषा। कहीं-कहीं अनगढ़पन जरूर है मगर कावेरी की सहज मुहावरेदार भाषा कहानी के साथ न्याय करती है। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं - 'अपने गिरेबान में झाँका', 'अभागे का सौभाग्य', 'सिर पर पहाड़ गिर-पड़ा', 'पहाड़-सी जिन्दगी' आदि। साथ ही भेदसपन को समेटे इनकी शब्दावलियाँ कहानी के यथार्थ को निकट बनाए रखती हैं, जैसे - कामिन, छिनाल-पतूरिया, एलाउटमेण्ट-फेलाउटमेण्ट, चारतल्ला, आगेमाय आदि। हालाँकि एक दो जगह भाषा बनाबटी होई है। जब सुगिया का पति मर जाता है तब वह थोड़ी बनावटी भाषा में रोती है। साथ ही 'इधर तो आ मेरी बुलबुल' जैसे वाक्यांश में बनावटीपन की झलक मिलती है। मगर यह भी एक सच्चाई है कि कावेरी की भाषा में उनके पात्रों के जीवन के सच को बयान करने की समर्थता है। डॉ. विमल थोरात के शब्दों कहें तो - "इन पात्रों की भाषा जीवन के उस पक्ष को उद्घाटित करती है, जहाँ उपेक्षित वर्ग सामाजिक उत्पीड़न, भेदभाव से पीड़ित हैं, उनके जीवन का यह संघर्ष केवल उन्हीं की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। यह एक सत्य है।"

शिल्पगत दृष्टिकोण से देखें तो 'द्रोणाचार्य एक नहीं' कहानी संग्रह की पाँच कहानियों में से तीन कहानियाँ पलैशबैक शैली में लिखी गई हैं। कथा में पलैशबैक शैली का अच्छा इस्तेमाल किया गया है। पलैशबैक शैली में कहानीकार का मन खूब रमा है। यहाँ यह कहना ज्यादा उचित होगा कि कावेरी पलैशबैक शैली में सिद्धहस्त हैं। दरअसल दलित महिला का जीवन इतनी यातनाओं से भरा होता है कि अगर कोई उनका हिसाब लगाने

बैठे या उन्हें गिनना शुरू करें या उन घटनाओं को किसी कहानी में पिराने की चेष्टा करें तो पिछली एक-न-एक घटनाएँ छूटने लगती हैं। किसी बड़ी घटना के सामने आते ही जीवन की सारी घटनाएँ परत-दर-परत उघड़ती जाती हैं, जिसमें फ्लैशबैक में चले जाना नितान्त ही स्वाभाविक अन्दाज है। प्याज के छिलके की हर उस परत की तरह जो आँखों में आँसू ला दें – ऐसी घटनाएँ। संभवतः यही वजह है कि कावेरी फ्लैशबैक शैली का उपयुक्त इस्तेमाल कर पाई है।

हालाँकि यह भी एक सच है कि दलित कहानियाँ कथा-शिल्प को ध्यान में रखकर नहीं लिखी जाती हैं। शिल्पगत दृष्टिकोण से ऐसी कहानियों में सौन्दर्य को ढूँढ़ना व्यर्थ है। क्योंकि ये कहानियाँ कहानी-कला की पूरक नहीं होतीं बल्कि यथार्थपरक भोगे हुए सत्य की संवेदनाओं, घटनाओं और उसके सुदृढ़ भावपक्ष को उजागर करने वाली होती हैं। इनकी सत्यपरक तथ्य को उजागर करते हुए डॉ. एन. सिंह ने कहा है – “दलित कथा की शक्ति शिल्प में नहीं, सत्य में है।”

14-7 I kjk'k

इस इकाई में हम लोग कावेरी द्वारा लिखित “सुमंगली” कहानी के माध्यम से दलित समाज में स्त्रियों की दशा को जान सके। खासकर दलित समाज में आई महिला मजदूरों की दशा से अवगत हुए, कि किस प्रकार शहरों, महानगरों में भी दलित मजदूर स्त्री का चौतरफा शोषण होता है। किस तरह वे शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठा पातीं। किस तरह वे जीवन को या स्वयं को जीवित रख पाने की जुगत में मेहनत करने के बावजूद मजबूर हैं। इस कहानी को पढ़ाते हुए हम इस नतीजे पर भी पहुँचते हैं कि समाज में जाति व्यवस्था की विद्रूपता ने इंसानों के जीवन को नरकतुल्य बना दिया है। यह एक ऐसा ज़हर है जो मानवता को शनैःशनैः मारता जा रहा है, और मानवता क्रूरता में तब्दील होती जा रही है। ‘सुमंगली’ की सुगिया के शोषण के लिए एक नहीं कई जोड़ी आँखें ताक में बैठी हैं। ठेकेदार द्वारा लगातार शोषण होने पर भी उसके बचाव में कोई सामने नहीं आता। न कोई महिला, न कोई पुरुष, क्योंकि सभी मजबूर हैं। साथ ही शोषित होते रहने की परंपरा में जिए जा रहे हैं। वे ठेकेदार या पूरी व्यवस्था से आतंकित भी हैं। उनके सामने अपने जीवन रक्षा के लिए रोजी-रोटी के छिन जाने का डर विकराल रूप धरकर सामने आ जाता है। तभी तो एक अबोध मासूम बच्ची का बचपन छीनकर लगातार उसका शोषण हो रहा है और बाकी मजदूरों के अंदर उसे बचाने या शोषण करने वाले का विरोध। करके उसकी रक्षा करने की न तो कहीं छटपटाहट है, न ही कहीं आक्रोश। उल्टे उस मालिक या अन्नदाता के प्रति एक डर है जो इन्हें सर झुकाए उसकी गुलामी करते रहने को मजबूर करती है।

यह कहानी सुधि पाठकों से इस व्यवस्था पर नए सिरे से सोच-विचार करने की माँग करती है। सामाजिक व्यवस्था से लेकर, कानूनी व्यवस्था की विद्रूपताओं को जड़ से खत्म करने की गुहार करती है। लगातार हो रहे स्त्री शोषण से पाठकों को क्षुब्ध भी करती है और आक्रोश से भी भर देती है। निःसंदेह ‘सुमंगली’ कहानी परिवर्तन की माँग को मजबूत करती है।

bdkb| 15 v| xkj k % Mk- d| l| e e?koky

bdkb| dh : i j| [kk

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 व्यक्तित्व एवं रचनात्मक योगदान

15.3 अंगारा : कहानी की मूल संवेदना एवं भाव

15.3.1 उत्पीड़न और दमन के स्रोत : धर्म और परंपराएं

15.3.2 स्त्री देह पर हिंसा

15.4 अंगारा : दलित स्त्री जीवन की यातना

15.5 अंगारा : स्त्री अस्मिता के प्रश्न और प्रतिरोध का स्वरूप

15.6 अंगारा : दलित चेतना और भविष्य की दिशा

15.7 अंगारा : भाषा एवं शिल्प

15.8 सारांश

15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.10 प्रश्न/अभ्यास

15-0 m'í';

‘अंगारा’ कहानी डॉ. कुसुम मेघवाल की चर्चित कहानी है। इस कहानी में दलित स्त्री जीवन का यथार्थ है, उनकी यातना है, साथ ही इस यातना से उबरने की कामना भी है। शोषण है, तो उसका जबरदस्त प्रतिरोध भी है। अपने साथ अन्याय का बोध होना किसी समाज में चेतना बनाने का संकेत है। उस अन्याय का प्रतिरोध करना चेतना की अगली सीढ़ी है। यह कहानी दलित स्त्री के उस विद्रोही रूप को दिखाती है, जो अब जुल्म को किसी भी कीमत पर सहन करने को तैयार नहीं है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में कहें तो “बस, अब बहुत हो चुका।”

‘अंगारा’ कहानी पढ़ने के बाद आप:

- ग्रामीण समाज में दासता के जातीय रूप को समझ पाएँगे;
- दलित स्त्री के शोषण की पहचान कर पाएँगे;
- दलित स्त्री के प्रतिरोध के कारणों को सम्यक् पृष्ठभूमि में जान पाएँगे;
- दलित समाज में मुक्ति की कामना और इस चिंतन की परंपरा को परख सकेंगे; और
- दलित स्त्री लेखन के पाठ और प्रक्रिया को सही संदर्भ में देख पाएँगे।

15-1 ĀLrkouk

यह कविताएं गद्यात्मक होते हुए भी मात्र गद्य नहीं हैं इनमें कवित्व भरा हुआ है। भाषा व शैलीगत लावण्य के प्रति अति सावधान परंपरागत कविता को ये कविताएं बेहरमी से कुचल कर अपना नया रास्ता ढूंढ लेती हैं। दारुण दलित जीवन का मार्मिक चित्रण करके व्यवस्था के अमानवीय स्वरूप की आलोचना करती हैं। दलित कविता को आभिजात्यता बनावटी भाषा से नफरत है। वह कल्पना आधारित स्थितियों से अपनी संस्कारित शिल्प और भारुझा की भी विरोधी है। जीवन के त्रासद अनुभवों की अभिव्यक्ति कठोर, तीखे और तेज शस्त्र की मार करने वाले शब्द प्रयोग में ही हो सकेगी। यहां पर भाषा जड़ नहीं वह परिवेशगत सच्चाई को परिवेश की भाषा में ही प्रस्तुत करता है। दलित कविता व्यक्ति विशेष के माध्यम से होने वाली समूह मन की अभिव्यक्ति है।

दलित कविता की भाषा लोक जीवन, दलित संघर्ष, मुक्ति की छटपटापहट, गहरी अंतर्दृष्टि, सामाजिक परिवर्तन की प्रतिबद्धता और उसके अनुरूप स्थितियों को बदलने की भाषा है। केवल भारती की कविता में व्यंग्य के सटीक प्रयोग द्वारा दलित जीवन की वास्तविकता का चित्र खींचते हैं। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के निर्माणकर्ताओं पर व्यंग्य के बाण छोड़ते हुए प्रश्नाकुल कविता दलित जीवन की सच्चाई की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। श्रम को हेय दृष्टि से देखने वाली ब्राह्मणवादी विचारधारा को अपने प्रश्नों से देखने वाली ब्राह्मणवादी विचारधारा को अपने प्रश्नों के व्यंग्यात्मक तीरों से धराशायी करते हुए अतीतानुमुखी परंपराओं की निर्दयता को उजागर करती है।

15-2 0;fDrRo ,o jpuKRed ;kxnku

डॉ. कुसुम मेघवाल दलित स्त्री लेखन की सशक्त रचनाकार हैं। उनका जन्म 29 अप्रैल 1948 को उदयपुर, राजस्थान में हुआ है। राजस्थान, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, राजाओं, सामंतों और ठिकानों की भूमि रही है। डॉ. मेघवाल आज़ाद भारत में ज़रूर पैदा हुईं, लेकिन चारों ओर जाति के रूप में सामंती बेड़ियाँ मौजूद थीं। इनके बीच उन्होंने अपने संघर्ष से अपना रास्ता बनाया। आज वे एक सरकारी संस्थान में महाप्रबंधक के पद पर कार्यरत हैं। इस मुकाम तक पहुँचने में जिन्दगी की जिन बाधाओं को उन्होंने पार किया, कई बार वे रूप बदलकर उनकी रचनाओं में व्यक्त हुई हैं। यही वजह है कि उनके रचनाकर्म में कल्पना की बजाय जीवन अनुभवों की उपस्थिति अधिक सशक्त रूप में हुई है।

डॉ. मेघवाल ने हिन्दी में एम.ए. करने के बाद अपना शोध कार्य पूरा किया। उनके शोध में दलित चिंतन की क्रांतिकारी धारा की पहचान की गई। उन्होंने भुला दिए गए दलित विचारकों के रचनाकर्म से हिन्दी जगत को परिचित कराया। उनके इस योगदान के बारे में दलित विचारक ए.के. विश्वास ने दलित लेखक साहित्य सम्मेलन नागपुर, 1995 में कहा – “मेरी सोच में नई पीढ़ी के दलित रचनाकारों को पुरानी पीढ़ी के रचनाकारों के रचनात्मक सृजन की समझ जरूरी है डॉ. डी. आर. जाटव, कुसुम मेघवाल, विमल थोरात आदि ने शोध कार्य पूर्ण कर अनगिनत पुस्तकें दलित समाज को दी हैं।” ऐसे शोधपरक लेखों से उन्होंने दलित चिंतन परम्परा को आगे बढ़ाया। बाबासाहेब आंबेडकर ने सैकड़ों साक्षर की तुलना में एक उच्च शिक्षित को अधिक महत्वपूर्ण माना था क्योंकि वह माप की नहीं मापदण्डों को बदलने की क्षमता रखता है।

डॉ. कुसुम मेघवाल की अब तक अठारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिसमें दलित जीवन के विविध पहलू उभरकर सामने आते हैं। इनमें “हिन्दी उपन्यासों में दलित

वर्ग 1989 ई. शोध ने पूर्व राज्यपाल महामहिम माता प्रसाद को भी प्रेरित किया। उन्होंने प्रेरणा के लिए अपनी दलित काव्यधारा पुस्तक की भूमिका में डॉ. मेघवाल का स्पष्ट उल्लेख भी किया है।

दलित स्त्री लेखकों की अल्पसंख्या में कुसुम मेघवाल एक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर के रूप में जानी जाती हैं।

15-3 vixkjk % dgkuh dh ey Ionuk ,o Hkko

‘अंगारा’ डॉ. कुसुम मेघवाल की दलित स्त्री चेतना से भरपूर एक सशक्त कहानी है। कहानी हरखू चमार की लड़की जमना के इर्द-गिर्द घूमती है। कहानी शुरू होती है बेटा जमना की लुटी इज्जत पर हरखू और उसकी पत्नी झमकू आँसू बहा रहे हैं। तिस पर पड़ोसियों के ताने कसने से इनकी पीड़ा बढ़ गई है। मूलतः दारुण पीड़ा झेलने वाली सत्रह साल की जमना अपने को घसीटती हुई पिता की चौखट पर आई है। पिता की चौखट पर सांत्वना के बदले अपमान और पीड़ा पाती है। लोगों के व्यंग्य बाण कुछ इस तरह आते हैं:

“छिनाल कैसी कूदती फिरती थी अपनी जवानी बताने को।”

“पता नहीं किन-किन के साथ मुँह काला करके आई है?”

“अब भुगतो, कौन करेगा शादी इस छिनाल से?”

जमना का दुःख-दिर्द किसी को समझ में नहीं आता। उसके छोटे भाई केश की समझ से बाहर यह बात है कि जीजी के आने पर खुशी के बदले आँसू और डॉट-डपट क्यों है?

जमना का बड़ा भाई हीरा उसकी बेबस दुर्दशा पर खौल उठता है। भाई की यह संवेदना बहन के दर्द पर मरहम है। हीरा अपने माँ-बाप और बहन से प्रण करते हुए कहता है— “बापू रोओ मत, जब तक हीरा की जान में जान है, वह अपनी बहिन की बेइज्जती का बदला लेकर रहेगा।” जमना को बड़ा साहस मिला, वह अपने भाई से बलात्कारियों (सुमेर सिंह और उसके चाचा नत्थू सिंह) की सारी करतूतें बताती है। साथ ही अपने बच निकलने की बात बताती है कि नशे में दोनों बेसुध थे तभी वह भाग पायी, अन्यथा उसका बचना तक मुश्किल था। हीरा गुस्से से काँपते हुए कहता है “अछूत गरीब की भी इज्जत होती है और वह भी इज्जत से जीना जानता है। इज्जत केवल इनकी ही बपौती नहीं है।” हीरा अपनी माँ की हँसली, गिरवी रखकर थाने में रिपोर्ट लिखवाता है। हीरा थानेदार से पूछता है कार्यवाही के लिए तो थानेदार उसके गवाह की माँग करता है। जबकि सच्चाई यह है कि सुमेर सिंह ने मामला रफा-दफा करने के लिए भारी-भरकम रिश्वत थानेदार को दी है। सुमेर सिंह किसी मंत्री का रिश्तेदार भी है, जिससे शासन-व्यवस्था की ओर से वह महफूज है। इसी से उसमें दलितों की बस्ती में जाकर धमकी देने की हिम्मत भी आ जाती है। अपमान में दबे-कुचले कुछ दलित उसकी धमकी से डर जाते हैं तथा उसे अपना अन्नदाता मानते हैं। वे जानते हैं कि पानी में रहकर मगर से कैसे बैर लिया जाए? नौजवानों के खून खौल रहे थे। सुमेर सिंह की धमकी ने हीरा के क्रोध में इजाफा कर दिया जैसे आग में घी का काम। हीरा अपनी बहन जमना को समझाता है “बहिन! ये सरकार और थानेदार इन बलात्कारियों को सजा नहीं दे सकते। ये सब तो नपुंसक हो गए हैं। तू खड़ी हो जा और मेरा साथ दे। उन्हें सज़ा हमें ही देनी पड़ेगी। जिसकी बहिन-बेटी पर गुजरती है, उसे ही पता लगता है।” हीरा हाथ में फरसा लेकर सुमेर सिंह को ललकारता है। सुमेर सिंह को क्रोध आता है कि “एक चमरे की यह हिम्मत। ठहर तुझे अभी बताता हूँ कि हमसे ज़बान लड़ाने से क्या होता है।” इससे पहले कि सुमेर सिंह बंदूक चलाए हीरा फुर्ती से उस पर कूद पड़ता है। दोनों निहत्थे हो गए

और गुत्थम-गुत्थम हो गए। हीरा का साहस रंग लाया दूसरे नौजवान लट्ट लेकर आ गए औरतें भी जमा हो गईं। सुमेर सिंह निढ़ाल हो गया और उसका चाचा भाग निकला। जमना जिसके साथ सुमेर सिंह ने अत्याचार किया था, क्रोध से अंगारा बन गई "सरकार और पुलिस जिसे सजा नहीं दे पाई, उसे जमना ने दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया। उसने सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर दिया।"

इस तरह 'अंगारा' मूलतः अत्याचार-शोषण के खिलाफ उठ खड़े होने का एक संकल्प है। एक तरफ से संकल्प की शुरुआत है। बलात्कारियों को सजा दिलाने में शासन तंत्र किस तरह काम करता है। यह किसी से छुपा नहीं है। भैंवरी देवी को भी न्याय की उम्मीद होगी लेकिन न्यायालय का फैसला बलात्कारियों के पक्ष में सुनाकर न्यायालय ने उस उम्मीद को तोड़ दिया। इस बारे में प्रो. विमल थोरात का कहना है — "बलात्कार की सैकड़ों घटनाओं में देखा गया है कि पुलिस का रवैया गैर-जिम्मेदारना और क्रूर है। प्राथमिक सूचना रिपोर्ट दर्ज करने या जाँच को अपना कर्तव्य व दायित्व न मानकर ठेंगा दिखा देते हैं। प्रायः वे पीड़ित को डरा-धमकाकर भगा देते हैं उनकी हरसंभव कोशिश मामले को कमजोर करने और अभियुक्त को बचाने की होती है। वे सरेआम आँख में धूल झाँकते हैं। चाहे आँख किसी की हो — प्रशासन, न्याय व्यवस्था समाज या स्वयं अपनी।"

इस प्रकार आप समझ रहे हैं कि कहानी जमना की है। एक दलित समाज के दमन की है। उस दलित समाज में भी स्त्री की अस्मिता और अस्मत दोनों स्वतंत्र नहीं बल्कि सवर्णों की क्रूर हथेली में कैद हैं। यह क्रूर हथेली चक्की के उन दो पाटों की तरह है जिसमें रहम नहीं है। यही कारण है कि जमना प्रतिरोध में अंगारा बन जाती है। सामंतों की जाति श्रेष्ठता में स्त्री पर अत्याचार करने के लिए बढ़ी। उन क्रूर हथेलियों के लिए। निःसंदेह अंगारा बनी जमना एक मिसाल है। एक दहशत है — शोषण करने वालों के लिए। और, यही मिसाल कई सुमेरसिंह, कई नत्थू सिंह को ऐसे कुकर्म से रोकने की चेतावनी है। जाति अहंकार, सत्ता का मद और रुढ़ प्रथाओं की सम्मति को जमना अपने अपमान का बदला एक झटके में सुमेरसिंह को पुरुषी अहंकार को मिटाकर कर दिखाती है। प्रशासन, पुलिस, न्यायपालिकाओं की अकर्मण्यता ने उसे इस अपनी अस्मिता का संघर्ष खुद लड़ने के लिए मजबूर जो कर दिया।

अतः कहानी की मूल संवेदना इस एक बिन्दु भर में सिमटी नहीं है, बल्कि इससे जुड़े कई सवाल करती है। इन सवालों का समाधान ढूँढ़े बगैर एक समाजवादी लोकतांत्रिक गणराज्य का सपना केवल सपना रह जाएगा, कभी हकीकत नहीं बन जाएगा। अकर्मण्यता ने उसे इस अपनी अस्मिता का संघर्ष खुद लड़ने के लिए मजबूर जो कर दिया। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने अग्नि का उदाहरण देकर यह बताया था कि अग्नि चाहे चंदन की हो, चाहे दूसरी लकड़ी की उसकी शिखा एक ही सी होती है, इस भाँति मनुष्य चाहे जिस भी जाति का हो, उसमें पाँचों आत्मिक गुण विद्यमान हैं तो वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का अधिकारी है।" (चाँद, अछूत अंक पृष्ठ. 906, वर्ष 5, खण्ड 4, संख्या 4)।

गौतम बुद्ध की यह बात आज स्वतंत्र भारत के समाज को समझनी ही होगी, अन्यथा भारत की आज़ादी के मायने बदल जाएंगे।

15-3 mRihMu vkj neu d lkr % èke! vkj ijijj,|

धर्म के बारे में सनातन सोच रही है — धरती धारयति अनेन इति धर्मः। आग का धर्म है; जलना; विद्यार्थी का धर्म है; पढ़ना। इसी सोच को हम थोड़ा आगे बढ़ाते हैं। क्षत्रिय का धर्म हुआ क्षत्र अथवा सत्ता धारण करना, शूद्र का धर्म हुआ सेवा करना.... और स्त्री

का धर्म हुआ पति की सेवा करना। स्त्री और शूद्रों में एक समानता है; सेवा करना उनका धर्म है। एक समूचे समाज की सेवा करता है, दूसरा अपने पति और परिवार की। ब्राह्मण धर्म या हिंदू धर्म में धर्म की परिभाषा करते समय स्वभाव अथवा कर्तव्य की बात की गयी, लेकिन धर्म का आचरण करते समय पैमाना बिल्कुल अलग होता है, वह पूजा पद्धति और सामाजिक पद्धति का मिला जुला रूप होता है। मसलन, शूद्र निम्न है क्योंकि पिछले जन्म में उसने पाप किये हैं। कौन से पाप किए हैं? तो ब्राह्मण का उत्तर होगा कि शूद्र के रूप में जन्म ही प्रमाणित करता है कि उसने पाप किए हैं। तो, धर्म के अनुसार इससे छूटकारा कैसे मिल सकता है? उत्तर होगा – ऊँची जातियों की सेवा करके।

15-3-1 mRihMu vkj neu d lkr % èke vkj ijijjk,।

धर्म की, या कहें तो रिलीजन का वास्तविक अर्थ – “रिलीगेयर” अथवा बाँधना, लोगों को कुछ आचार विचार और मूल्यों के द्वारा आपस में एकता में बाँधना। एकता अपने पूर्व शर्त के रूप में समानता की माँग करती है। यहाँ समानता को साम्यवादी समानता नहीं भी माने तो कम से कम एक आधार जहाँ पर लोग समानता के व्यवहार को अनुभव कर सकें। एक बार ही सही लेकिन समानता उनके अनुभव जगत का हिस्सा बन जाती है। लेकिन हिंदू धर्म में यह बात नहीं पायी जाती है। इसमें समानता का कोई अवसर शायद ही दिया गया है। इस बात को एक दलित बेहतर समझ सकता है। हम मराठी दलित कवि की इन पंक्तियों में देख सकते हैं—

‘गिरजे की घंटी बजी
सभी ईसाई उठे और चल दिए
मस्जिद से अजान की आवाज आई
सभी मुसलमान उठे और चल दिए
मंदिर की घंटियाँ बजी
कुछ हिंदू उठे और चल दिए
कुछ हिंदू वहीं बचे रह गए।’

जो बचे रह गए वह दलित थे, जिन्हें मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। लौकिक जीवन में समानता का कोई अवसर नहीं देने वाला हिंदू धर्म परलोक में परम सत्ता अथवा भगवान के सामने समानता का आश्वासन देता है। इस आश्वासन की पुष्टि करने के लिए, पिछले तीन हजार साल से कोई दलित धरती पर वापस नहीं आया। ऐसे छलावे के प्रति आक्रोश की भूमि पर मध्यकाल में निर्गुण भक्ति का जन्म हुआ। जिन परंपराओं और प्रथाओं की जकड़न में स्त्रियों को रखा गया। उस दासता का दंश की यह बदले रूप में कुसुम मेघवाल की कहानी ‘अंगारा’ में उभारा गया है। जमना और हीरा इसी परंपरा से संघर्ष करते हैं। परंपरा ने उनसे स्वाभिमान का भाव छीन लिया था। वे आधुनिक चेतना के द्वारा इसे हासिल करते हैं।

15-3-2 L=h ng ij fg|k

स्त्री देह को पहली बार नारीवादी विचारकों ने विमर्श का विषय बनाया। नारीवाद क्या है? स्त्री और पुरुष के बीच विषमता का बोध और इस विषमता को समाप्त कर सम्बन्ध और व्यवहार के स्तर पर समानता की स्थापना के लिए सिद्धांत प्रविधि और आंदोलन का दूसरा नाम ही नारीवाद है। इस चिंतन में नारी ने अपनी देह का पुरुष से अलग विमर्श प्रस्तुत किया है। स्त्री की देह पुरुष सत्ता के लिए एक और भोग और दूसरी ओर वर्चस्व का सबक रही है। एक ओर, उसकी देह पर पति का अधिकार दिया गया तो दूसरी ओर पिता

और पुत्र को उसकी पहरेदारी का दायित्व सौंप दिया गया। शायद यही वजह रही होगी कि मनुस्मृति के आठवें अध्याय में स्मृतिकार को लिखना पड़ा, “स्त्री बचपन में पिता के, जवानी में पति के और बुढ़ापे में पुत्र के सहारे रहती है।” अंगारा कहानी में जमना पितृसत्ता के वर्चस्व की शिकार है, उसकी अस्मत् पर सामंती पितृसत्ता का सुमेर सिंह हमला करता है। जमुना एक दलित स्त्री है। उसका शोषण एक दलित के और एक स्त्री के शोषण से अलग है। दलित स्त्री पर तिहरी मार के ऐसे प्रसंग पर विचारक प्रो. विमल थोरात ‘कम्युनल कम्बैट’ के मई 2001 अंक में कहती है। : ‘दलित अस्मिता की राजनीति ने जातीय पहचान पर तो जोर दिया लेकिन जाति की लैंगिक भेदभाव संबंधी भूमिका को समझने, उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता की पूरी तरह से उपेक्षा की। दलित नारी के नारी पक्ष को दलित राजनीति ने, तो उसके दलित पक्ष को नारी आंदोलन ने उपेक्षित किया है।”

जमुना के सामने एक तरफ दलित समाज हैं, जो आरंभ में उसके साथ सहानुभूति नहीं दिखाता है, उधर सामंती समाज का अत्याचारी सुमेर है, जो उसे भोग्य वस्तु मानता है। उसकी देह पर अधिकार वास्तव में दलित जीवन पर अधिकार का ही प्रयास है। इस समूचे संघर्ष की मार दलित स्त्री पड़ती है। सुमेर सिंह इसी भावना के तहत कहता है; ‘अभी तो एक को उठा कर ले गये हैं.... सभी कलियों की बारी आएगी घबराना मत’। यहाँ पर धमकी किसी परिवार को नहीं बल्कि एक समाज को दी जा रही है। सत्ताएँ लोगों पर कई प्रकार से शासन जमाती है – अर्थ, श्रम, ज्ञान और चेतना पर अधिकार से शासन करती हैं। वर्चस्व का आखिरी चरण आत्म, सम्मान पर अधिकार कायम करने से पूरा हो जाता है। यही वह चरण है, जहाँ अंगारा कहानी मोड़ लेती है।

मार्क्स का कहना था कि सामाजिक अस्तित्व व्यक्ति की चेतना का निर्धारण करता है। दलित समाज में आंदोलन के द्वारा चेतना उत्पन्न हुई है। इस चेतना के कारण की ही हीरा जैसे लोग जमुना के साथ खड़े हो जाते हैं। जमुना की स्त्री देह पर हमले से जो कहानी शुरू हुई थी, वह सुमेर की देह से अंग विच्छेद के साथ पूरी हो जाती है। इसे क्या हिंसा का कृत्य माना जा सकता है? जिन परिस्थितियों में घटना हुई, उसमें जमुना के पास कोई अन्य विकल्प नहीं था। ऐसे में अपने सम्मान की रक्षा करना मनुष्य मात्र का दायित्व बनता है, वैसे भी न्याय के प्रश्न पर हिंसा और अहिंसा का प्रश्न उगाना अन्याय को ही प्रश्रय देना है।

15-4 vixkjk % nfyr L=h thou dh ;kruk

दलित लेखन विशेषकर स्त्री लेखन का पाठ सामान्य कहानियों से अलग है। इन कहानियों का उद्देश्य न किसी रूमानी भावना, नैतिक आदर्श अथवा हास्य मनोरंजन का नहीं, बल्कि दलित समाज के दर्द और आक्रोश को व्यक्त करना है।

अंगारा कहानी आरंभ होती है एक घटना से दलित हरखू की बेटी जमना दो दिन तक गायब रहने के बाद घर वापस आ गई है। उसकी घर वापसी खुशी का सबब होना चाहिए लेकिन यहाँ मातम छाया हुआ है। यही बात उसके छोटे भाई को समझ में नहीं आती है कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? आखिर पास-पड़ोस के लोग जमना के साथ-साथ उसके माँ-बाप को भी क्यों कोस रहे हैं – केशू जान नहीं पा रहा है उसके सामान्य विवेक को यह बात चुभती है, जिसे हम अबोध कहकर खारिज कर सकते हैं। लेकिन जरा सोचिए, जमना नाम की लड़की की जगह जमना प्रसाद नाम का लड़का अगर दो दिन गायब रहकर घर वापस आया होता तो घर पर क्या माहौल होता? शायद सब लोग राहत की साँस ले रहे होते। लड़के को थोड़ी डाँट-फटकार मिलती, कुछ कटु-कटाक्ष होते,

लेकिन अंत में 'सुबह का भूला शाम को घर आए तो भूला नहीं कहते', कहकर उसको क्षमा कर दिया जाता। छोटे भाई केशू का अबोध मन ऐसे ही किसी व्यवहार की उम्मीद अपनी बड़ी बहन जमना के साथ भी करता है। क्योंकि वह स्त्री-पुरुष के बीच भेद करने के पितृसत्तात्मक रवैये का आदी नहीं हुआ है।

लेकिन समाज इस बच्चे की तरह निश्छल नहीं है। इस पितृसत्ता ने पुरुष और स्त्री देह को लेकर अलग-अलग मानदण्ड बना रखे हैं। जैसा कि दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर में प्रो. विमल थोरात लिखती हैं – “विवाह संस्था में यौन शुचिता को स्त्री देह की पवित्रता का मानक बनाकर उसके सांस्कृतिक, सामाजिक अर्थ निर्मिति द्वारा स्त्री पर आधिपत्य प्रस्थापित किया। स्त्री देह को अपवित्रता के अर्थ में बदलकर स्वयं स्त्री देह को पुरुष सत्ता का औजार बनाया।” देह शुचिता का वही सनातनी सवाल, समाज जमना से बार-बार पूछता है। सदियों से भारतीय स्त्री ने इसका जवाब नहीं दिया। रामायण में जब राम ने यही प्रश्न सीता से किया, तो उनके पास भी कोई जवाब नहीं था; अंगारा कहानी की जमना के पास भी नहीं है। तथाकथित सवर्ण द्वारा शोषित लड़की है अंगारा की जमना। कुकर्मि सुमेर सिंह और उसका चाचा नत्थू सिंह दोनों ने उसकी अस्मिता पर हमला कर उसका अपमान किया था। उसके देह की पवित्रता पर अब कीचड़ उछाला जा रहा था समाज और पास-पड़ोसियों द्वारा उस कीचड़ के छींटे सीधे जमना के माँ-बाप के मुँह पर उड़ाए जा रहे थे। जिससे डरकर जमना के माँ-बाप जमना को सहारा देने के बजाए चुप्पी साधे बैठे थे। उन्हें भी बेटी पर, उसकी बेबसी पर आँसू बहाने के अलावा कुछ सूझ नहीं रहा था। जमना का पिता हरखू चुपचाप रोए जा रहा था और उसकी माँ झमकू छाती पीट-पीटकर प्रलाप कर रही थी, मगर घूँघट ताने थी। यह हमारे पाखण्डी समाज की ही माँग है कि जुल्म-जोर या अत्याचार पर बेबस दलित झमकू अगर रोए भी तो एक मर्यादा में। या अब वह समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं रहा।

जमना अब अकेली थी और समाज से ठुकराए जाने के साथ ही अशक्त भी। “गठरी बनी जमना के पास इन बाणों को झेलने के सिवाय कोई चारा नहीं था, वह बेहद उदास, अपमानित, टूटी हुई थी, किन्तु उसका दुख-दर्द सुनने वाला वहाँ कोई नहीं था।” (अंगारा) उसके सामने पास-पड़ोस, अपने-पराए लोगों का वह हूजूम था जो सुमेर सिंह – नत्थू सिंह की बजाय जमना को ही नहीं बल्कि उसके माँ-बाप को भी बलात्कार का ज़िम्मेदार ठहरा रहा था। अगर जमना हमेशा के लिए गायब हो जाती यानी वापस न आती तो संभवतः लोग इसे दुर्घटना मानकर भूल जाते और उनका जीवन फिर से वक्त की धारा के साथ बहने लगता। कुछ समय बाद लोग अपनी जिंदगी के ढर्रे पर फिर उसी तरह जीने लगते मानों यहाँ कभी कुछ शर्मनाक हुआ ही नहीं, अनचाहा घटा ही नहीं और किसी का सम्मान कभी लुटा ही नहीं। लेकिन जमना और उसके परिवार वालों को ये शर्मनाक घटना भूलने नहीं देते, गाहे-बेगाहे कानाफूँसी करके या ताने मारकर। यह भी हमारे समाज का एक कड़वा सच है। हमारा सामज यौन शुचिता को स्त्री की पवित्रता का पर्याय मानकर चलता है। पुरुष सत्ता स्त्री को बेटी, पत्नी और माता के रूप में तो स्वीकारती है लेकिन एक स्त्री के रूप में कदापि नहीं। सामंती परिवार के आदर्श का निरूपण करने वाला तुलसीदास सीता के इन्हीं तीन रूप पर बार-बार बलिहारी होते हैं :

“जनकसुता जग जननी जानकी,
अतिशय प्रिय करुणानिधान की”

जमना का दारुण दुःख यही है कि एक ओर सामंती सत्ता और जाति के अहं में चूर पुरुषसत्ता का प्रतिनिधि पुरुष सुमेर सिंह और उसके चाचा नत्थू सिंह ने उसके साथ बलात्कार किया तो दूसरी ओर लोग और समाज ने कुकर्मि की बजाय उसी को दोषी

ठहराया। जबकि सच्चाई यही है कि यहाँ दोषी केवल सुमेर सिंह और नत्थू सिंह ही नहीं बल्कि वह पूरा समाज है, जिनके बीच ऐसा शर्मनाक हादसा होता है और अपराधी अपना सीना ताने गर्व से घूमता रहता है। अपनी अपराध भावना से मुक्त होने के लिए समाज उल्टा जमना को ही दोषी बना देता है। उनका तर्क कुछ इस प्रकार से है कि न जमना बनाव-श्रृंगार कर आज़ादी से घूमती, न सुमेर सिंह की नजर उस पर पड़ती और न ही ऐसा हादसा होता। यह एक ऐसा कुतर्क है कि इसको अगर आगे बढ़ाएँ तो हत्या, चोरी और डकैती भी कोई अपराध नहीं रह जाएगा। न आदमी पैसा कमाए, न उस पर डकैत की नजर पड़े और न डकैती होगी। यह तर्क सभ्य समाज में नहीं बल्कि जंगल समाज, जंगल कानून में चलता है – योग्यतम उत्तरजीविता Survival of Fittest दुर्भाग्य की बात है कि इस जंगल कानून के कई तत्व हमारी पुरानी परंपरा में है। संस्कृत के पण्डित बड़े गर्व से कहते हैं ‘

‘वीर भोग्यम् वसुन्धरा’

यहाँ वीर पुरुष है और वसुन्धरा स्त्री है। पुरुष को इस भोग का अधिकार परंपरा ने कई बार दिया। सीता-हरण, द्रौपदी चीर-हरण से लेकर कई ऐसे प्रसंग इसी सोच के प्रतीक हैं। पुरुष अपने सुख के लिए स्त्री पर अपनी मनमर्जी थोप सकता है। मनु के धर्मशास्त्र से लेकर वात्स्यायन के कामशास्त्र तक में उन तमाम स्थितियों का वर्णन है, जिसमें पुरुष काम करने वाली स्त्री को अपनी इच्छापूर्ति का साधन बना सकता है। तब ऐसे में बलात्कार जैसा जघन्य कर्म सामंती पुरुष के लिए पुरुषत्व के अहंकार को जगजाहिर करने का मानो पर्याय बन जाता है; क्योंकि उन्हें उनकी परंपरा ही ऐसी सीख देती चली आ रही है। ‘अंगारा’ कहानी में सुमेर सिंह और नत्थू सिंह अपने पुरुषत्व की धौंस भी गाँव वालों के सामने खुलेआम जमाते हैं। उन्हें धमकी देकर आते हैं कि “अभी तो एक को उठाकर ले गए हैं, सभी कलियों की बारी आएगी, घबराना मत। किसी ने हमारे विरुद्ध गवाही दी या ज़बान खोली तो ये बन्दूक देख लो, भूनकर रख देंगे।” वहीं दूसरी ओर बलात्कार स्त्री के लिए उसके वजूद पर हमला है, जिससे बाद का उसका पूरा जीवन असहनीय यातना बन जाता है। ‘अंगारा’ कहानी इसी यातना को दिखाती है। यह भारतीय गाँवों की एक मनहूस सच्चाई है कि धर्मशास्त्रों द्वारा जन्मना अछूत बताई गई दलित स्त्री को यह जाति व्यवस्था सम्मान की अधिकारिणी नहीं मानता। जिसने भँवरी देवी से लेकर फूलन देवी तक न जाने कितनी मेहनतकश दलित औरतों पर हुई दैहिक शोषण की हिंसा को मात्र दलित स्त्री पर हुए जोर-जुल्म के रूप में देखा गया। एक मानवीय और लोकतांत्रिक समाज ऐसे में अपराधी को कड़ा दण्ड देता है और पीड़ित को अपना समर्थन तथा सहानुभूति देता है, जो कि न्याय की माँग है। लेकिन ऐसा न्याय न फूलनदेवी को मिला न भँवरी बाई को। जब न्याय मिलता नहीं तो, उसे छीनना यातना सहने वाले की मजबूरी बन जाती है।

लेखिका डॉ. कुसुम मेघवाल ने दर्शाया है कि "ग्रामीण समाज में सभी संस्थाएँ दलित के विरोध में हैं।" पुलिस का काम हिंसा के शिकार स्त्री-पुरुषों का संरक्षण और दबंग शोषकों को सजा दिलवाना है, लेकिन पुलिस का रवैया दलित-गरीबों के पक्ष में काम नहीं करता। वह निर्दोष स्त्री के खिलाफ और दोषी पुरुष के साथ खड़ा हो जाता है। पुरुष समाज दलित स्त्री को अथवा मज़दूर स्त्री को अपनी इच्छापूर्ति का साधन मानता आया है। भारत में शारीरिक श्रम और परिवार के बीच सम्बन्ध बहुत पहले से टूट चुका था। दलित स्त्री शारीरिक श्रम परिवार के लिए आय अर्जन का कार्य भी करती हैं। कार्य स्थल पर उसका शोषण उसकी जातिगत निम्न श्रेणी और आर्थिक रूप से सवर्णों पर निर्भरता के कारण है। जमना भी अपने परिवार की चारदीवारी में महफूज रह सकती थी, जैसा कि सवर्ण जाति की स्त्री हो सकती है। लेकिन परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के लिए उसे घर

से बाहर निकलना पड़ता है। घास काटते समय ही वह सुमेर सिंह के हमले का शिकार बन जाती है। घर की आर्थिक सुरक्षा में लगी जमना पुरुषसत्ता और जातिसत्ता की हवस से अपनी सुरक्षा नहीं कर पाती है। आर्थिक योगदान से स्त्री अपनी क्षमता का विस्तार करती है, अपनी भूमिका की संभावना को साकार करती है। ऐसे में वह पुरुष वर्ग से बराबर के व्यवहार की हकदार बनती है। घरेलू कार्यों से स्वतंत्र आर्थिक क्रियाओं में लगी महिला से पुरुष समाज संकट महसूस करता है। ऐसी महिलाओं पर वह हमले करने से चूकता नहीं।

जमना पर हमला एक स्त्री, एक कामकाजी और एक दलित महिला पर हमला है, साथ ही गाँव में जाकर सुमेर सिंह की धमकी पूरे दलित वर्ग और समाज पर हमला है। एक दलित और स्त्री के रूप में जमना सामाजिक व्यवहार से बहिष्कृत है। इसलिए बाबा साहेब आंबेडकर वर्ग व्यवस्था से जाति व्यवस्था को भिन्न मानते हैं, और जाति निर्मूलन द्वारा समता स्थापित किए जाने के प्रति आशावान भी हैं क्योंकि जाति ही व्यक्ति को आर्थिक अधिकार देकर समाज, बाजार, विपणन और व्यवहार उसकी उपस्थिति को निश्चित कर उसके भविष्य को या तो सँवारती है अथवा बर्बाद करती है। अछूतों की सामाजिक स्थिति के साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति का निर्धारण जाति संस्था ही एक तो श्रम का विभाजन है दूसरे श्रमिकों का ही विभाजन है। जातिगत दंश कहानी में प्रमुखता से तो उभरा ही है साथ ही प्रतिरोध का उग्र रूप कहानी को चरम बिन्दु में ले जाता है। ऐसे प्रतिरोध ही रुग्ण समाज की सोच को ध्वस्त करने में सहायक हैं। जमना समेत समूचा दलित समाज मजदूर के रूप में है। लेकिन उनके साथ सामाजिक व्यवहार श्रम की जरूरत से नहीं परंपरा, धर्मग्रंथों तथा लोकाचार से तय होता है। जिसने दलित जीवन का पुनर्जन्म तथा कर्मवाद के सिद्धांतों के द्वारा जन्म-जन्म की गुलामी में तब्दील कर दिया है। हिन्दू धर्म दलित समाज की छाया से दूर रहने की सीख देता है, लेकिन हवस पूर्ति के लिए किसी भी हद तक गिर सकता है। तभी जमना पूछती है - "आप लोग दिन के उजाले में हमारी परछाई से परहेज करते हैं, हमें छूत ही अपवित्र हो जाते हैं, किन्तु रात के अंधेरे में हमारा पसीना और होठों से पर भी आप अपवित्र नहीं होते?" उसके शब्द हिन्दू मानस की पाखण्डी सोच पर प्रहार करती है, जो कथनी और करनी में अंतर करती है।

15-5 vixkjk % L=h vfLerk d i i'u vkj ifrjkèk dk Lo : i

‘अंगारा’ कहानी का आरंभ संध्या के समय से होता है। एक ओर अंधेरा हरखू की झोपड़ी में उतर रहा है, दूसरा अंधेरा जमना की ज़िन्दगी में पसर गया है। पुरुष के कुकृत्य से उसके पूरे वजूद पर ही सवाल खड़ा हो जाता है। पुरुष सत्तात्मक समाज बलात्कारी पुरुष का उसके द्वारा की गई हिंसा के लिए जिम्मेदार नहीं मानता बल्कि हिंसा की शिकार स्त्री को ब्राह्मणवाद ने तय किए स्त्री देह की पवित्रता मापदंडों द्वारा हिंसक-क्रूर निर्णय देकर, स्त्री पर दोष लादकर उसे ही कटघरे में खड़ा कर देता है। जमना का संघर्ष बहुत कड़ा है। एक साथ उसे पुरुषसत्ता, जातिसत्ता और ब्राह्मणवाद के विरोध में अपना मोर्चा संभालना है। वह इसके प्रतिकार को तैयार होती है।

इस लड़ाई में उसका साथ देता है — उसका भाई हीरा। हीरा एक चेतना सम्पन्न दलित नौजवान है। इस युवा के ऊपर पुरानी पीढ़ी का बोझ नहीं है। उसकी परवरिश इस आजाद भारत में हुई है, जिसका संविधान बाबासाहेब आंबेडकर ने बनाया है। वह ऐसे माहौल में पला-बढ़ा है, जिसमें स्वतंत्रता और समानता वेदांत की कोई अवधारणा नहीं बल्कि कानून है। यह कानून लोहे के हथोड़े की तरह ठोस है और उसी तरह मारक भी। डॉ. आंबेडकर ने दलित समाज को राजनीतिक शक्ति हासिल करने के लिए प्रेरित किया था, ताकि कानून का सही दिशा में उपयोग हो सके।

‘अंगारा’ कहानी में जमना और उसका भाई हीरा आरंभ में प्रतिरोध के लिए इसी कानूनी अधिकारों का सहारा लेते हैं। कहा जाता है कानून कितना भी अच्छा क्यों न हो जाए, लेकिन उसे लागू करने वालों की नीयत में खोट है तो कानून असफल हो जाता है। ब्रिटिश राज अपने साम्राज्यवादी चरित्र के बावजूद “कानून के राज” के कारण जाना गया। लेकिन स्वराज्य के बावजूद भारत में कानून राज की समस्याएँ बरकरार रहीं। पुलिस, प्रशासन या न्यायालय हो, सभी का रूप जातिवादी बन गया। ऐसे में ‘जमना’ जैसी दलित स्त्री को न्याय मिलने की गुंजाइश कहाँ थी, और उसे न्याय मिला भी नहीं। हीरा से पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने के लिए रुपयों की माँग की जाती है। वह अपनी माँ की हँसुली बेचकर पुलिस वालों को पैसे फीस समझ कर देता है। लेकिन सुमेर सिंह मामले को रफा-दफा करने के लिए उससे भी भारी रकम थाने में दे आता है। ऊपर से वह किसी मन्त्री का रिश्तेदार भी है। लेन-देन की इस सौदेबाजी के बाद पुलिस रक्षक होने की बजाय भक्षक के साथ हो गई। जब बाड़ ही खेत खाने लगे तो भला किसान क्या करे। प्रो. गोपाल गुरु के इस कथन से यह बात अधिक स्पष्ट होती है कि “भारतीय संदर्भ में न लोकतंत्र और नहीं राज्य दलितों को अवमानस से संघर्ष में मदद का ठोस आश्वासन देता है।” ऐसी दशा में जमना और हीरा के प्रतिरोध का बदलता है।

सभ्य समाज में प्रशासन, पुलिस और विधायिकाएँ जैसी वैधानिक और मीडिया, नागरिक समाज जैसी संस्थाएँ किसी व्यक्ति अथवा तंत्र की तानाशाही को रोकने का तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा करने उसे न्याय दिलाने और व्यक्ति के रूप में सम्मान मिले इसलिए कार्यरत होती है। लेकिन ‘अंगारा’ कहानी में ऐसी संस्थाएँ दिखती नहीं। इनका कार्यक्षेत्र शहरी समाज और मध्यवर्ग के साथ जुड़ा रहता है। गाँव में इनकी उपस्थिति न के बराबर ही रहती है। वहाँ पर सुमेर सिंह और नत्थू सिंह के सामने जमना और हीरा है। इन दोनों के बीच कोई भी आधुनिक संस्था मदद के लिए मौजूद नहीं है। हीरा तभी आक्रोश में कहता है “बहिन ये सरकार और थानेदार इन बलात्कारियों को सजा नहीं दे सकते। ये सब तो नपुंसक हो गए हैं। तू खड़ी हो जा और मेरा साथ दे। उन्हें सजा हमें ही देनी पड़ेगी। जिसकी बहन बेटी पर गुजरती है, उसे ही पता लगता है।”

हीरा का यह सहज भाव बाबासाहेब आंबेडकर की बताई उस कथा की याद दिलाता है। कथा में भेड़ भगवान के पास अपने जीवन और सम्मान की गुहार लेकर जाती है। कथा का सार यही था कि सम्मान कभी मिलता नहीं, इसे हासिल करना पड़ता है और इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है। जमना और हीरा का संघर्ष भी इसी सम्मान को हासिल करने का संघर्ष है। वैधानिक रास्ता असफल होने के बाद वे खुद ही न्याय करने का फैसला करते हैं और मुजरिम को सजा भी तुरंत देते हैं। किसी भी लोकतंत्र के लिए ऐसा न्याय कोई आदर्श नहीं है, लेकिन आत्मरक्षा और सम्मान के लिए जमना दौड़ी-दौड़ी घर में गई और कोने में पड़ी दैराती उठा लाई, सरकार और पुलिस जिसे सजा नहीं दे पाई, उसे जमना ने दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया। उसने सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर दिया।”

इस प्रतिशोध में जमना अपने भाई हीरा का सहारा लेती है। एक तरह से लग सकता है कि यह प्रतिशोध जमना का है अथवा हीरा का? यहाँ ऊपरी तौर पर हीरा नायक लग सकता है, लेकिन कहानी को ध्यान से देखें तो यह बात गलत ठहरती है। कहानी में जमना का शोषण करने वाला एक व्यक्ति नहीं बल्कि उसके साथ पूरा समूह है। एक ब्राह्मणवादी व्यवस्था है – जो पुराणों, स्मृतियों में स्त्री दमन को व्यक्तिगत मान्यता देता है, जाति जो अपने आदमी के कुकृत्य का भी बचाव करती है और प्रशासन जो बहुत क्रूर ढंग से तटस्थ हो जाता है – तो जब दमन सामूहिक है, तब उसका प्रतिरोध भी सामूहिक होगा, व्यक्तिगत नहीं। अकेले चला जा सकता है लेकिन भ्रष्ट तंत्र से अकेले लड़ना

मुश्किल होता है। इसलिए इस कहानी में लेखिका ने विरोधी समूह के खिलाफ कुछ दलित युवाओं को भी संगठित होते हुए दिखाया है। पुरानी पीढ़ी निष्क्रिय रही लेकिन नई पीढ़ी संघर्ष में सामने आई। जमना ने अपने भाई के रूप में इसी नई पीढ़ी का साथ पाया।

वास्तव में जमना के साथ हुए इस कुकृत्य के पीछे पूरी एक व्यवस्था है। इसी व्यवस्था के खिलाफ 'सुनो ब्राह्मण' कविता में प्रखर दलित कवि मलखान सिंह लिखते हैं:

"हमारी दासता का सफर
तुम्हारे जन्म से शुरू होता है
और इसका अंत भी
तुम्हारे अंत के साथ होगा।"

अतः जमना का दारुण दुःख अपने प्रतिरोध के रूप में उमड़ पड़ता है। कहानी का अंत नारी शक्ति को दर्शाता है, जो पुरुष सहयोग की आकांक्षा रखती है, लेकिन मोहताज नहीं है। हाँ, जमना अपने साथ हुए जघन्य कुकर्म को, अपनी स्थिति, अपनी वेदना को सबके सामने स्पष्ट रूप से रखती है और न्याय की गुहार करती है। उसके इसी गुहार ने भाई हीरा और अन्य युवा लोगों में चेतना का संचार किया। हीरा का स्वाभिमान जागा – "तू चिंता मत कर जमना! धिक्कार है मुझे जो मैंने इनसे तुम्हारी इज्जत का बदला नहीं लिया। मैं इन पापियों – चंडालों को बता दूँगा कि अछूत गरीब की भी इज्जत होती है और वह इज्जत से जीना जानता है।"

इस स्वाभिमान को जगाने का श्रेय जमना को है। वही कहानी की मुख्य पात्र है। कहानी का आरंभ उसकी यातना से होता है और अंत उसके प्रतिशोध से उसी की वेदना के आँसू हैं जो संकल्प की आँच में तपकर 'अंगारा' बन गए हैं। इसलिए कहानी में प्रतिशोध मूलतः दलित स्त्री का प्रतिरोध है, युवा दलित पीढ़ी ने जिसमें अपना भी सहयोग दिया है।

15-6 vixkjk % nfyr pruk vkj Hkfo"; dh fn'kk

'अंगारा' कहानी में घटनाओं का विकास गाँव की जातीय बनावट के भीतर होता है। पुरानी कहावत है कि असली गाँव में सोलह वरन के लोग रहते हैं। लेकिन इस गाँव में मुख्यतः दो जातियाँ – एक ओर ठाकुर तो दूसरी ओर चमार। संभव है कि गाँव में अन्य जातियाँ भी हों लेकिन घटना के विकास में उनकी कोई भूमिका दिखती नहीं। इसलिए वे लगभग अनुपस्थित हैं। पार्श्व में उनके कटाक्ष और उलाहना जरूर सुनाई पड़ते हैं।

दोनों जातियों के बीच चातुर्वर्ण्य की धर्मगत मान्य परंपरा ने स्वामी और सेवक का सम्बन्ध तय किया था। आरंभ में सुमेर सिंह और उसका कुनबा इस सम्बन्ध का पालन करवाने में सफल होता लगता है लेकिन अंत में जाते-जाते जमना ने सुमेर सिंह को भीषण सजा देकर मानो मालिक और गुलाम का सम्बन्ध भी काट दिया। परंपराओं से निर्धारित संबंधों के पालन की सभी शर्तों को और उत्पीड़न की अहंकारी रीतियों से नकारकर प्रतिरोध की नई अस्मितावादी परंपरा को अपनाया। गाँव का भूस्वामी वर्ग जो प्रायः उच्च जाति का होता लेकिन क्षेत्रीय विविधता के अनुसार मध्यवर्तीय जातियों का भी हो सकता है। यह वर्ग ही दलित समाज के बीच अपना रौब जमाता है, उनकी उत्पादन शक्ति पर नियंत्रण हासिल करने के लिए। मूल मकसद है – दलित की उत्पादक शक्ति पर नियंत्रण। सभी वेद-पुराण और धर्मशास्त्र इसी दिशा में अपनी मान्यताओं का विकास करते हैं। उत्पादक शक्ति पर नियंत्रण के लिए दलितों को मानसिक रूप से दास्यत्व को स्वीकार करने हेतु कर्म फल और पुनर्जन्म के सिद्धांत गढ़े गए हैं। वेद-पुराण धर्मशास्त्र और महाकाव्य इसी रणनीति को पुष्ट करने को रचे गए। लेकिन इसके विरोध में महात्मा

बुद्ध, कबीर, रैदास, ज्योतिबा फूले की परंपरा थी, जो बाबासाहेब आंबेडकर के द्वारा आधुनिक युग में व्यक्त हुई।

vixkjk % Mk- dle e?koky

समता, स्वाधीनता और न्याय से संयुक्त विचार को लोकतंत्र के संविधान ने मूलभूत मूल्य के रूप में अपनाया है। प्रत्येक व्यक्ति स्वाधीनता के अधिकार, समताधारित समाज की इकाई के रूप में प्राप्त करने का अधिकारी है। पितृसत्ता, जाति सत्ता और गांवों में मौजूद दबंग जातियों के आर्थिक तंत्र ने धर्म तथा ब्राह्मणवाद की मान्यताओं को वरीयता देकर लोकतांत्रिक समताधारित मूल्यों की अवहेलना करके अपनी सत्ता को कायम रखा है। उत्पीड़न और दमन के द्वारा जाति अहंकार, पुरुषवादी अहंकार और पैसे की सत्ता मिलकर राज्य द्वारा मुहैया सुरक्षा के कानून और न्याय को लंगड़ा बनाकर अपने अधीन कर लेते हैं।

कहानी में प्रतिकार की भावना का आधार क्या है? इसके दो कारण देखे जा सकते हैं – पहला ज़मीन के सम्बन्ध में, दूसरा चेतना के सम्बन्ध में। सुमेर सिंह गाँव में दबंग जाति का प्रतिनिधि है। वह दलित लड़की पर शारीरिक हमला करता है गाँव वालों को बंदूक की नोक से डराता है, थाना-कचहरी को अपने मतलब के लिए इस्तेमाल करता है। दूसरी ओर जमना, हीरा और समाज है। जमना का बलात्कार स्त्री दमन का पुराना रूप लगता है, जिससे दलित स्त्री सदियों से गुजर रही है। लेकिन इस कहानी में उसका प्रतिरोध नया है। गौर करें, तो पाएँगे कि सुमेर सिंह अगर भू-स्वामी है तो हीरा भी भूमि मज़दूर नहीं है। उसके पास भी जमीन का एक टुकड़ा अवश्य है। जब उसे बहन की दुर्दशा के बाद वापस घर आने की सूचना मिलती है, तब वह अपने खेत में काम कर रहा है, किसी दूसरे के लिए बेगारी नहीं। वह भी भूमि का मालिक है, भले छोटी ज़मीन ही सही। यह स्वामित्व ही उसके अंदर स्वतंत्रता की भावना भरता है। अगर वह सुमेर सिंह की ज़मीन पर मज़दूरी करता तो शायद अन्याय को सह जाने का विचार उसके मन में आता, प्रतिकार करने का नहीं।

इस आर्थिक हैसियत में परिवर्तन ही उनकी चेतना को बदलता है। नई चेतना कहती है कि “बस्स! बहुत हो चुका।” इसी भावना को जताते हुए हीरा कहता है – “हम तुम्हारी इज्जत करते हैं इसका यह मतलब नहीं कि हमारी बहन-बेटियों की इज्जत से तुम्हें खेलने दें” यह आक्रोश उस व्यवस्था को बदलने के लिए है, जो जन्म के आधार पर भेदभाव करती है। इसके बारे में बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा था कि ‘हिन्दू समाज एक मीनार की तरह है। ध्यान देने की बात है इसमें अलग-अलग मंजिलें (जातियाँ) हैं लेकिन सीढ़ियाँ नहीं हैं, जो व्यक्ति जिस मंजिल (जाति) पर पैदा हुआ है, उसी पर मर भी जाता है।’ जमना और हीरा मंजिल बदलना नहीं चाहते लेकिन वे जहाँ पर हैं, वहाँ सम्मान से जीना चाहते हैं। उनकी इस चेतना के पीछे ज्योतिबा फूले तथा डॉ. आंबेडकर के विचारों का प्रभाव है। यह परिवर्तन केवल व्यक्तिगत विद्रोह मात्र नहीं है बल्कि इसमें संगठित होने की आकांक्षा है। हैसियत में परिवर्तन तो व्यक्तिगत प्रयास हो सकता है, लेकिन समाज में परिवर्तन सामूहिक प्रयास से ही संभव है। हीरा सुमेर सिंह के लिए अपनी नफरत में अन्य युवकों को भी भागीदार बनाता है। “बुजुर्गों के दूसरी ओर नौजवान भी खड़े थे। उनका खून खौल रहा था हीरा का साहस देखकर अन्य युवक भी अपनी झोपड़ियों से लट्ट लेकर मैदान में आ कूदे। फिर तो औरतें भी पीछे न रहीं। देखते-ही-देखते वहाँ एक युद्ध सादृश्य उपस्थित हो गया।” ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य सभी यह महसूस कर रहे थे कि गलती जमना की नहीं सुमेर सिंह की है। उनकी जाति और कुनबे के दमन की बात है, लेकिन इसके पहले किसी में इतना साहस न था। यह बर्बरता अपनी नियति मानकर सभी सहते आए थे। यहाँ तक कि दोष भी जमना को ही

दे रहे थे कि — “वह बनाव —सिंगार करके घूमती फिरती थी” — लेकिन आज हीरा के साहस ने इनकी सोई चेतना जगा दी है।

‘अंगारा’ कहानी में वर्तमान की घटना के द्वारा भविष्य की सामाजिक परिवर्तन की दिशा का संकेत है। इसमें जमना की प्रतिशोध समानता के लिए है। यह मुक्ति की कामना का परिणाम है। जमना का स्वतंत्रता को जिस सीमा में बाँधना चाहा, उस सीमा को दलित समाज ने काट दिया। यह आज़ादी और मानवीय गरिमा की स्थापना का मार्ग खोल देता है। मानवीय गरिमा की स्थापना के क्या प्रयास होने चाहिए इस पर रमणिका गुप्ता अपनी राय देती है — “दरअसल, गैर-दलितों को यह समझना होगा कि अस्मिता की माँग, निबलवादी या अलगाववादी नहीं है बल्कि मानवतावाद का ही हिस्सा है और यह एक अपंग एवं भंग समाज को पूर्णता देने का प्रयास है। ऐसा साहित्य जो ये भावना पैदा करे जिससे अनुप्राणित होकर मनुष्य मनुष्य का ही नहीं, धर्म और धर्म का ही नहीं बल्कि पुरुष और नारी का भेदभाव भी मिटे और पारस्परिक सद्भाव और सम्मान का विकास हो ताकि लोग हिन्दुत्ववाद, धार्मिक कठमुल्लेपन और जातीयता के संकीर्ण दायरे से निकलें और जातिविहीन समाज के नवनिर्माण में दलित अस्मिता अपना हस्ताक्षर चिन्हित कर सके।”

15-7 vixjk % Hkk'kk ,o f'kyi

‘अंगारा’ कहानी एक घटना प्रधान कहानी है, जिसका मूलभाव एवं संवेदना काफी सशक्त है। कहानी एक घटना से आरंभ होती है। इस घटना के सूत्रों का बाद में विस्तार होता है। बलात्कार की घटना से गाँव के जीवन में हलचल मच जाती है। इस हलचल को लेखिका ने छोटे-छोटे संवादों और संकेतों के माध्यम से दर्शाया गया है। इस आरंभिक घटना में अवलोकन बिन्दु जमना के छोटे भाई केशू का है। उसकी नजर से कथा आगे बढ़ती है; तो, जो उसका अबोधपन उभरता है वह गाँव समाज के अंतर्विरोध को उजागर करता चलता है — “जीजी के अचानक गायब हो जाने से घरवाले सभी परेशान थे, आस-पास के गाँवों में, रिश्तेदारों के यहाँ उसे ढूँढ़ आए थे। आज जब जीजी आ गई है तो सभी रो क्यों रहे हैं। ताई, चाची सभी उसे डाँट रही हैं।” यह उस अन्तर्विरोध की ओर इशारा है कि पुरुष सत्ता की पहरेदारी में सबसे आगे बुजुर्ग स्त्रियाँ रहती हैं।

डॉ. कुसुम मेघवाल ने आरंभ में प्रतीकों का सहारा भी लिया है। झोंपड़ी में अंधेरा वास्तव में जमना की जिन्दगी का अंधेरा है। इस निराशापूर्ण माहौल में झोंपड़ी में जलता दिया आशा और अंधेरे के विरुद्ध प्रतिरोध का संकेत बनकर उभरा है। वास्तव में दिए का आगाज़ ही अंगारे के रूप में अंजाम को तय कर देता है।

‘अंगारा’ कहानी के शिल्प की विशेषता उसकी नाटकीयता में है। कहानी एक सीधी रेखा में नहीं चलती बल्कि कई उतार-चढ़ाव से गुजरती है। जब लगता है कि जमना हालात के आगे नतमस्तक हो जाएगी, तभी उसे भाई हीरा का सहारा मिल जाता है। जब लगता है कि भाई-बहन, पुलिस-प्रशासन से न्याय प्राप्त कर लेंगे, तभी सुमेर सिंह उपस्थित होता है। वह पूरे गाँव को धमकाता है, तो बुजुर्गों के मुँह पर ताले लग जाते हैं। कहानी का अंत नाटकीयता का उत्कर्ष है। हीरा सुमेर सिंह को ललकारता है, लेकिन उसके हथ्र की जिम्मेदारी जमना को दी जाती है जिसके कुकर्म की घटना से यह कहानी शुरू हुई, उसी के द्वारा बदला पूरा करने की घटना के साथ कहानी खत्म हो जाती है।

कहानीकार डॉ. कुसुम मेघवाल की भाषा स्पष्ट और पारदर्शी है। लेखिका ने अपने जीवन अनुभवों से इस भाषा को गढ़ा है। उसमें तर्क और भेदभाव की बेचैनी दिखाई पड़ती है। जब जमना सवाल करती है — “आप लोग दिन के उजाले में हमारी परछाई से भी परहेज करते हैं। हमें छूते ही आप अपवित्र हो जाते हैं, किन्तु रात के अंधेरे में आपकी

छूत-छात और जातपात कहाँ चली गई?" यह कथन अपनी साफगोई में जाति व्यवस्था और उसकी पवित्रता के पाखण्ड को उजागर कर देने में सक्षम है।

कहानी घटना प्रधान होने के कारण प्रतीक और आम बोलचाल की भाषा में स्पष्ट और अच्छी है। सहज सरल आम बोलचाल की भाषा में मुहावरे जान डाल देते हैं। डॉ. कुसुम मेघवाल के यहाँ भी इसका भरपूर और अच्छा इस्तेमाल हुआ है — 'लुटी इज्जत पर आँसू बहा रहा,' 'आँखों में क्यों चुभ रही,' 'गठरी बनी जमना', 'बाणों को झेलते', क्रोधाग्नि से शरीर कँप-कँपा जाना', 'आँसुओं से भीगा', 'सिर पीटती माँ', आदि मुहावरे उत्पीड़ित जमना के प्रति समाज, परिवार के परंपरागत सोच को और स्त्री के प्रति दूषित दृष्टिकोण को दर्शाने में सहायता करता है। उन सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों की कलई भी खोलता है।

गँवई परिवेश के साथ न्याय करती हुई इनकी भाषा के वाक्यांश ही वर्ग भेद, जातिगत भेदभाव, शासक-शोषित की पहचान कराने की दमखम रखते हैं:

'ज़बान चलाती है हरामजादी' — सुमेर सिंह
 'जब जी भर जाएगा मारकर यही जंगल में फेंक देगे, चील-कौए खा जाएँगे' — सुमेर सिंह
 'एक चमरे की यह हिम्मत' — सुमेर सिंह
 'झोंपड़ियों में आग लगा देंगे' — सुमेर सिंह
 'तुम्हारी एक भी औरत नहीं बचेगी' — सुमेर सिंह
 'कौन करेगा शादी इस छिनाल से' — भीड़ का एक व्यक्ति
 'गठरी बनी जमना',
 'झँमकू घूँघट खींचे अपनी छाती-पीटकर प्रलाप मचा रही थी' —
 'जिसकी बहिन-बेटी पर गुजरती है उसे ही पता चलता है' — हीरा
 'इज्जत केवल इनकी बपौती नहीं' — हीरा
 'कुछ नहीं बोलेंगे हुजूर, आप तो हमारे अन्नदाता हो' — एक दलित बुजुर्ग
 'जल में रहकर मगर से बैर कैसे हो सकता है?' — एक दलित बुजुर्ग

15-8 I kjk'k

डॉ. कुसुम मेघवाल की 'अंगारा' कहानी दलित स्त्री उत्पीड़न की घटना से शुरू होती है। इस घटना के माध्यम से भारतीय समाज व्यवस्था का जातिवादी चरित्र उभरकर सामने आता है। इस इकाई में हम लोगों ने देखा कि सामंतवादी प्रवृत्ति के सवर्ण सुमेर सिंह और नत्थू सिंह दलित स्त्री जमना को भोग की वस्तु समझते हैं। पूरी बस्ती को चेताकर आगे भी ऐसे जघन्य अपराध करते रहने की घोषणा करते हैं। उनकी यह घोषणा आज़ाद भारत के लोकतांत्रिक छवि को नष्ट करती है। सामंतवादी जातिवादी, वर्णवर्चस्व, वर्ग भेद में अंधा, झूठे आडम्बर और सवर्ण वर्ग के अहंकारी चरित्र को सामने लाती है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में कुण्ठित और अस्वस्थ कारनामे होते रहते हैं, जो एक विकसित समाज के लिए बाधक हैं।

इसी प्रकार हमने कहानी में सवर्ण के मदांध को देखा। पुलिस और मंत्री की सुरक्षा में अपराधी के बढ़ते हौसले को देखा। आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी गाँव में दलित बस्ती के यथार्थ को देखा कि कैसे वे जल में रहकर मगर से बैर नहीं ले सकते। अपने शोषण और अपमान को सकते रहने के आदि बुजुर्ग दलित अवश और बेबस हैं। दलित स्त्री जमना के अपमान को सम्मान दिलाने की कोशिश नई पीढ़ी के दलितों में देखी। दलित

स्त्री को अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ते देखा। अपनी जातिगत हार और अपमान को संघर्ष द्वारा जीत में बदलते दलित लड़की जमना की जाग उठी चेतना को देखा। हीरा और अन्य युवा दलितों को बराबर सम्मान पाने और हक की लड़ाई में उठ खड़े होने का साहस पाया। यही साहस और चेतना जमना में 'अंगारा' का रूप ले लेती है, जिसमें सदियों से चले आ रहे कुकृत्यों को जलाकर राख कर देने की ताकत है।

15-9 dN mi ;kxh iLrd

वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 2001, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा. लि, दिल्ली-110051 ।

थोरात, विमल, *दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर*, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्रा. लि., नई दिल्ली ।

गुप्ता, रमणिका, 2003, (संपा.) *दलित कहानी संचयन*, साहित्य अकादमी, दिल्ली ।

गुप्ता, रमणिका, 1997, *दूसरी दुनिया का यथार्थ*, ललित प्रकाशन, दिल्ली ।

कुसुम वियोगी, *चर्चित दलित कहानियाँ*, ललित प्रकाशन, दिल्ली ।

थोरात, विमल, बडत्या, सूरज, 'प्रस्तावना' — 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर', भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली-110016, और रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर — 302 004 (भारत) ।

गुप्ता, रमणिका, *दलित हस्तक्षेप*, संपा. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 2001, शिल्पागत, दिल्ली ।

गुप्ता, रमणिका, 1996, *युद्धरत आम आदमी, दलित चेतना*, शोध विशेषांक, प्रसं. अक्टूबर-दिसम्बर, 1996, अंक 36, हजारीबाग ।

डॉ. नरेन्द्र सिंह, 1999, *दलितों के रूपांतरण की प्रक्रिया*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ।

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, 1997, *दलित साहित्य रचना और विचार*, अतिश प्र. दिल्ली ।

डॉ. कुसुम मेघवाल, 1991, *हिन्दी उपन्यास और दलित नारी*, संघी प्रकाशन, जयपुर ।

जय प्रकाश कर्दम, 2004, *दलित साहित्य*, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली ।

पं. नंद किशोर तिवारी, *चाँद, अछूत अंक*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला सं. 1927, पहली आवृत्ति, 1998 ।

15-10 Á'u@vH;kI

- 1) कहानी का शीर्षक 'वैतरणी' क्यों रखा गया है?
- 2) मंगतूराम को अपने काम में कब बेचैनी पैदा हुई थी और क्यों?
- 3) श्मशान घाट और बस्ती की तात्कालिक समस्याएँ क्या हैं?
- 4) दलित बस्ती के लोगों और पण्डितजी की आवश्यकता में क्या अंतर है?
- 5) दलित बस्तियों के अल्प विकास और उनकी सरकार द्वारा उपेक्षा के कारणों पर विस्तार के साथ प्रकाश डालें ।

- 6) 'वैतरणी' कहानी के उद्देश्य को उजागर करने में नीरा परमार कहाँ तक सफल हुई हैं – उदाहरण सहित बताएँ।
- 7) 'द्रोणाचार्य एक नहीं' – कावेरी
- 8) और बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा, खण्ड पाँच, अनुवादक/सम्पादक – डॉ. एल.जी. मेश्राम 'विमल कीर्ति' राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा. लि, पहला संस्करण, 2008, नई दिल्ली।
- 9) आधुनिकता के आइने में दलित।
- 10) सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र – बड़त्या, सूरज, भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पहला संस्करण; 2020।
- 11) दलित समाज के विकास में राजनीतिक चेतना के महत्व पर प्रकाश डालें।

vixkjk % Mk- d|le e?koky

